समर्पण

उन महान् अध्यात्मज्ञानी मुनिवरों को जिन्होंने
अध्यात्मज्ञान की ज्योति प्रकटाकर
जन कल्याण किया।

अध्यात्मज्ञान की आवश्यकता
(हिन्दी)

अध्यात्मज्ञान के गूढ़ार्थ को समझने के लिए इस उपयोगी पुस्तक का गुजराती से हिन्दी अनुवाद श्री चांदमलजी सीपाणी ने उत्साह तथा लगन पूर्वक समर्पण भाव से सरल हिन्दी में किया जिसको श्री जिनदत्तसूरि मण्डल, अजमेर ने प्रकाशित किया है।

अध्यात्मज्ञान यह जीवन के उन्नति पथ पर आगे बढ़ने के लिए अमृत के समान है। प्रत्येक आत्मार्थी बंधुओं को इसकी महत्ता समझने के लिए इस पुस्तक का अध्ययनकर लाभ उठाना चाहिए ऐसी मेरी विनम्र प्रार्थना है।

गोपीचन्द धाड़ीवाल
बी.एससी., एलएल.बी.
अजमेर

दिनांक १६-१-८०

प्रकाशक के दो शब्द

श्री जिनदत्तसूरि ज्ञानमाला का ३०वां पुष्प आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस ज्ञानमाला द्वारा कई आध्यात्मिक व तात्त्विक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिनका समाज में समुचित आदर हुआ है। उसी कड़ी में यह 'अध्यात्मज्ञान की आवश्यकता' नामक पुस्तक प्रकाशित की जा रही है।

"कर्तव्य" नामक पुस्तक में लेखक ने कहा है कि—"ग्रन्थ यह एक जीवित आवाज है, यह पृथ्वी की सतह पर चलती एक आत्मा है।" मानव चला जाता है, स्मरणचिह्नरूपी गृह स्तम्भ आदि गिर कर मिट्टी बन जाते हैं। परन्तु जो कुछ बच रहता है और अपने जीवन के बाद भी टिका रहता है वह मनुष्य विचार है। प्लेटो की मृत्यु हुए तो लम्बा समय हो गया परन्तु उनके विचार और काम आज भी जीवित हैं। कुग्रन्थ विप के समान हैं और वे दुष्ट परिणाम फैलाते रहते हैं। हानिकर ग्रन्थकार कब्र में सोते हैं और साथ-साथ पीढ़ी दर पीढ़ी भविष्य की प्रजा को आघात पहुंचाते हैं। अच्छे ग्रन्थ जीवन के लिये रत्न के खजाने के समान हैं और कुग्रन्थ पीड़ाकारक राक्षस के समान हैं। अच्छे ग्रन्थ प्रमाणिकता, सत्यता, सदाचार और ईमानदारी की शिक्षा देते हैं। लेखक चले जाते हैं परन्तु उनके लिखे ग्रन्थ कायम रहते हैं। महान् विचारों का अन्त नहीं होता, वे सैंकड़ों हजारों वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी पुस्तकरूप में उतने ही ताजे रहते हैं जैसे उस समय थे। 'सद्वर्तन' पुस्तक में हागलिट कहते हैं कि "पुस्तकें अपने हृदय ग्रन्थी के साथ जुड़ जाती हैं। अच्छी पुस्तकें अपने

त्र के समान हैं। शेक्सपियर आदि महान् लेखकों के अवसान
वाद भी आज उनके विचार वैसे के वैसे जीवित हैं।"

सब ही पुस्तकों में अध्यात्मशास्त्र महान् शास्त्र गिना
ाता है। अध्यात्मशास्त्र की सम्यग्रूप से उपासना कर उन्हें
ाचार में लाया जाय तो इच्छित फल की प्राप्ति हुए बिना
हीं रहती।

इसी हेतु को लक्ष में रखते हुए अध्यात्मप्रेमी व जैन धर्म
ं प्रति निष्ठावान श्रा. श्री गोपीचंदजी सा. धाड़ीवाल की
रणा से उन्हीं के अर्थ सहयोग से यह पुस्तक प्रकाशित की जा
ही है। श्री धाड़ीवालजी सा. का कहना है कि जैन धर्म में
यवहारमार्ग बताने वाले बहुत ग्रन्थ हैं और उनके प्रचार-
सार के साथ अध्यात्मज्ञान के ग्रन्थों का भी प्रचार-प्रसार
ोना जरूरी है। हम श्री धाड़ीवालजी सा. की इस उदारता,
रणा एवं आर्थिक सहयोग के लिए अत्यंत आभारी हैं व
ुरुदेव से उनके दीर्घायु की कामना करते हुए विनम्रतापूर्वक
ृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

आशा है अध्यात्मप्रेमी इस पुस्तक को आदि से अंत तक
ढ़कर इससे लाभ उठावें इसी अभिलाषा के साथ।

चाँदमल सीपाणी
मंत्री
श्री जिनदत्तसूरि मण्डल
दादावाड़ी, अजमेर

१६-१-१९८०

परमात्मा स्तोत्रः

शिवं शुद्ध बुद्धं परं विश्वनाथं ।
न देवं न बंधुर्नकर्म न कर्त्ता ॥

न अंगं न संगं न इच्छा न कायं ।
चिदानन्द रूपं नमो वीतरागं ॥ १ ॥

न वंधो न मोहो न रागादि लोकं ।
न जोगं न भोगं न व्याधिर्नशोकं ।
न क्रोधं न मानं न माया न लोभं चः ॥ २ ॥

न हस्तौ न पादौ न घ्राणं न जिह्वा ।
न चक्षुर्नकर्णं न वक्त्रं न निद्रा ।
न स्वादं न स्वेदं न वर्णं न मुद्रा ॥ चि० ॥ ३ ।

न जन्मं न मृत्यु न मोहं न चिन्ता ।
न क्षुत्तृट् न भीतं न कृष्यं न तुंदा ।
न स्वामी न भृत्यं न देवो न मर्त्या ॥ चि० ॥ ४ ।

त्रिदंडे त्रिखंडे हरे विश्व व्यापं ।
ऋषिकेश विद्धंश कर्म्मादि जालं ।
न पुण्यं न पापं न अक्षया न प्राणं ॥ चि० ॥ ५ ।

न वाल्यं न वृद्धं न विद्विन्नमूढ़ा ।
न छेदं न भेद्यं न मूर्त्तिर्नमोहा ।
न कृष्णं न शुक्लं न मोहं न तन्द्रा ॥ चि० ॥ ६ ।

नमस्कार स्तोत्र

दर्शनं देव देवस्य, दर्शनं पाप नाशनं।
दर्शनं स्वर्ग सोपानं, दर्शनं मोक्ष साधनं। १।
दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधुनां वंदनेन।
च नतिशृति चिरंपापं, छिद्रहस्ते यथोदकं। २।
दर्शनं जिन सूर्यस्य, संसारध्वांत नाशनं।
बोधनं चित्त पदमस्य, समस्तार्थ प्रकाशकं। ३।
दर्शनं जिनचन्द्रस्य, सद्धर्मामृत वर्षनं।
जन्मदाद्य विनासाय, वृहणं सुख वारिधेः। ४।
जिनेभक्ति जिनेभक्ति दिने-दिने!
सदा ये्स्तु सदा येस्तु, सदा येस्तु भवे भवे। ५।
नहित्राता नहित्राता, नहित्राता जगत्रये।
वीतराग समोदेवो, न भूतो न भविष्यति। ६।
अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेवशरणं मम।
तस्मात सर्घं प्रयत्नेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वर। ७।
वीतरांग मुखं दृष्ट्वा, पद्मराग सम प्रभं।
नैक जन्य वृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति। ८।
अर्हंतो मंगलं नित्यं, सिद्धा जगति मंगलं।
मंगलं साद्य वो मुख्यं, धर्म्मः सर्वत्र मंगलं। ९।
लोकोत्तमा इर्हहितः, सिद्धा लोकोत्तमाः सदा।
लोकत्तमोय्तीशानां, धर्मो लोकोत्तमोर्हतां। १०।
शरणं सर्व्वदार्हतः, सिद्धा शरण मंगलां।
साधवः शरणं लोके, धर्म्मशरणमर्हत ।११।

—o—

(१) हे भव्य जीवो ! अध्यात्मज्ञान यह कभी नहीं कहता कि तुम प्रतिक्रमण मत करो, वरन् अध्यात्मज्ञान तो प्रतिक्रमण के अध्यवसायों को पैदा करता है। वास्तविकता में तो यह है कि प्रतिक्रमण किये बिना कोई जीव मोक्ष गया ही नहीं है।

(२) अध्यात्मज्ञान और शुभाचार रूप चारित्र दोनों हों तो दूध में शक्कर मिले जैसा है। अध्यात्मज्ञान होते यदि व्रत-पच्चक्खाण न हो तो यह कर्म का दोष है, अध्यात्मज्ञान का नहीं।

(३) कुछ लोग कहते हैं कि इस काल में अध्यात्मज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती, इसकी प्राप्ति तो बारहवें गुणस्थानक में होती है, ऐसे लोगों का कहना उत्सूत्रभाषण जैसा है। वास्तव में चौथे गुणस्थानक से अध्यात्म की प्राप्ति शुरू हो जाती है।

(४) नवतत्त्वों का सातनय से अभ्यास करने से अध्यात्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

(५) क्रियाओं की तरफ विचार करें तो क्रियाओं के सूत्रों में भी अध्यात्मज्ञान भरा हुआ है। छः आवश्यक की क्रिया भी अध्यात्मज्ञान की ही मुख्यता बताती हैं।

(६) अध्यात्मज्ञान से विधि पूर्वक संवर की क्रियाएँ करने में रुचि पैदा होती है और उसके अनुसार प्रवृत्ति होती है।

(७) सारे जगत् में अध्यात्मज्ञान के द्वारा समानभाव का प्रचार किया जा सकता है; आर्यों की और आर्यावर्त को [illegible] के लिए अध्यात्मज्ञान की अति आवश्यकता [illegible]

बताया है, दुनिया के पदार्थों में वृत्ति अनुसार सुख-दुख की कल्पना हुआ करती है। प्रोफेसर सेसिल ने कहा है कि "सच्चा धर्म आध्यात्मिक जीवन, आध्यात्मिक स्वच्छता और अध्यात्मिक शिक्षा है और जिस पुरुष में ये वास्तविक रूप में होते हैं उसे हरएक स्वच्छ और सत्कार्य के लिए खास उत्तेजन की पुष्टि मिलती है। और हम सबको इस दुनिया का त्याग करना है"। "मृत्यु सबको आती है, हम प्रतिदिन अपने दांतों से कब्र खोदते हैं" साइरस ने अपनी कब्र पर ये शब्द लिखवाये थे। "अरे मनुष्य ! तू चाहे जो हो और चाहे जिस जगह से आता हो परन्तु ईरानी राज्य को स्थापित करने वाला मैं साइरस हूँ ! आज थोड़ी मिट्टी मेरे शरीर को ढक रही है उसकी ओर तू ध्यान दे।"

जिन मनुष्यों की अभिलाषा असीम होती है और जो अंत में अपनी इच्छा पर मर्यादा रखकर देखता है उसके मन में निराशा आती है। अब अधिक राज्य जीतना बाकी नहीं रहे इस विचार से सिकन्दर रोने लगा। मोहम्मद गजनवी-भारत के प्रथम मुसलमान विजेता की भी यही स्थिति थी। उसे जब मालूम हुआ कि मैं अब मरने वाला हूँ तब उसने रत्न और स्वर्ण के खजानों को अपने सामने रखने का हुक्म दिया। जब उसने उन खजानों को देखा तो बालक की तरह रोने लगा। उसने कहा "अरे ! इन खजानों की प्राप्ति के लिए मैंने कितना मानसिक एवं शारीरिक कष्ट उठाया है और इनकी सुरक्षा के लिए कितना प्रबंध किया है ! और अब मैं मरने और इसको छोड़कर जाने की तैयारी में हूँ"। उसे उसके महल में दफनाया; जहां उसकी दुःखी आत्मा भूत की तरह भटकती है ऐसी लोगों की धारणा है। इससे समझना है कि मनुष्य का

जितनी वास्तविक सुख को प्राप्त करने के लिए होना चाहिए। सच्चा सुख तो वास्तव में अध्यात्मज्ञान के बिना प्राप्त नहीं होता। अध्यात्मज्ञान के बिना मनुष्य अंधकार में सुख को ढूंढता है। अध्यात्मज्ञान द्वारा पूर्व में अनेक महात्माओं ने सच्चा सुख प्राप्त किया है। इसलिए सच्चे सुख की प्राप्ति के लिए अध्यात्मज्ञान की आवश्यकता सिद्ध होती है।

धर्म का मूल

दुनिया में अध्यात्मज्ञानरूप धर्ममूल बिना कोई भी दर्शनरूपी वृक्ष टिक नहीं सकता। आत्मिक ज्ञान हुए बिना विषयों को जीता नहीं जा सकता। श्रीमद् यशोविजयजी उपाध्याय अध्यात्मसार ग्रंथ में अध्यात्मज्ञान को सर्व प्रकार के ज्ञान में उत्तम माना है। श्रीमद् हेमचन्द्राचार्य ने भी अध्यात्मज्ञान की उत्तमता को स्वीकार किया है। अध्यात्मज्ञान से मन, वाणी और काया के योग की शुद्धता होती है। जगत् में चिंतामणि रत्न समान अध्यात्मज्ञान है, अध्यात्मज्ञान के कारण ही भारतदेश उत्तम गिना जाता है। पाश्चात्य देशों में बाहरी विद्या के कारण बाह्य उन्नति दीखती है, किन्तु आंतरिक उन्नति के अभाव में दया आदि के सिद्धांतों का विशेष प्रमाण में प्रचार नहीं हुआ। जब जब अध्यात्मज्ञान से लोगों की वृत्ति हटी है और अध्यात्मज्ञान के स्वरूप को समझने वालों पर तिरस्कार भाव आया है तब तब भारत में युद्ध, क्लेश और कुसंप के बादल मंडराये हैं। मनुष्यों का अध्यात्मज्ञान में प्रवेश होना महा कठिन है। कितने ही अध्यात्मज्ञान का खण्डन करते हैं उसका कारण यह है कि उन्होंने अध्यात्मज्ञान का आस्वादन नहीं किया है। कितने ही मनुष्य किसी अध्यात्म आराधक मनुष्य के दुराचरण

को देखकर ऐसा कहने लगते हैं कि "अध्यात्मज्ञान वा निश्चयवादी होने से भ्रष्ट होना पड़ता है" । परन्तु इस प्रकार कहने वालों को उत्तर में कहना पड़ेगा कि आचार और सुविचार से भ्रष्ट होने में अध्यात्मज्ञान अपनी शक्ति काम में नहीं लेता। **अध्यात्मज्ञान से तो दुराचार और भ्रष्ट विचार का नाश होता है फिर भी कोई दुराचार और मलिन विचार वाला हो तो इसे कर्म का उदय समझना।** मोहनीय कर्म का जोर विशेष होता है। और अध्यात्मज्ञान का बल अल्प होता है तो मोहनीय कर्म के वश में मनुष्य फंस जाता है। कितने ही मोहनीय कर्म के उदय से अध्यात्मज्ञान का—निश्चय का आदर नहीं करते और अध्यात्मज्ञान का तिरस्कार करते हैं। ऐसे भी अनाचारी, भ्रष्टाचारी, क्रोधी, निंदक, क्लेश करने वाले और **अशांति फैलाने वाले होते हैं तो इसमें व्यवहार-धर्म का दोष नहीं है।** व्यवहार चारित्र से अनीति, मन, वाणी और काया के दोषों का नाश होता है, फिर भी व्यवहारचारित्र-क्रिया को एकान्तरूप में मानने वाले में अनीति का आचरण देखने में आता है इसमें क्रिया व्यवहार का दोष नहीं गिना जायगा, परन्तु उस व्यवहारचारित्र धारक को प्रमाद ही दोषरूप है, वैसे अध्यात्मज्ञानी को प्रमाद होने से वह दोषी गिना जा सकता है परन्तु अध्यात्म या निश्चयज्ञान को दोषी नहीं कहा जा सकता।

क्रिया शुद्धि

कितने ही कहते हैं कि अध्यात्मज्ञान का अभ्यास करने से क्रिया पर श्रद्धा या रुचि नहीं रहती। ऐसा कहने वाले अध्यात्मज्ञान या क्रिया का स्वरूप यथार्थता से नहीं समझते हैं। वास्तव में अध्यात्मज्ञान बिना सर्व क्रियाओं का [illegible]

से नहीं जान सकते । अध्यात्मज्ञान बिना धर्म की क्रिया करने से, वाणी और काया के योग की शुद्धि करने के लिए कोई भी मनुष्य समर्थ नहीं होता । अध्यात्मज्ञान का स्वरूप जो समझते हैं उनके हृदय में शान्तरस प्रकट होने की आशा रहती है, परन्तु जो अध्यात्मज्ञान पर द्वेष कर उसका खंडन करते हैं उनके हृदय में शांतरस की भावना प्रकट न होकर निंदा, हाय-तोबा, वितंडावाद और कषाय की वृत्ति दिखाई दे तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं ।

अध्यात्मज्ञान और जैनागम

जैन दर्शन में बड़े बड़े विद्वान हो गये हैं उनकी पुस्तकें पढ़ते हैं तो उनसे अध्यात्मज्ञानरस का बोध होता है । श्री कुंदकुंदाचार्य जो दिगम्बर आचार्य कहे जाते हैं, उनमें प्रायः माध्यस्थ गुण दिखाई देते हैं परन्तु अध्यात्मज्ञान के प्रताप के कारण ही । कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य और देवेंद्रसूरि के हृदय भी अध्यात्मज्ञान रंग में रंगे हुए थे । पन्नवणा सूत्र के कर्ता श्यामाचार्य अध्यात्मज्ञान रंग में रंगे हुए थे । पन्नवणा सूत्र में द्रव्यानुयोग की बहुत व्याख्या आती है । द्रव्यानुयोग को भी अपेक्षा से अध्यात्मज्ञान कहा जाता है । द्रव्यानुयोग के ज्ञान बिना अध्यात्म ज्ञान में नहीं उतरा जा सकता । भगवतीसूत्र में भी विशेष रूप से द्रव्यानुयोग और अध्यात्मज्ञान की व्याख्या देखने में आती है । आत्मा के सम्बन्ध में जो-जो कहा गया है उन सबका अध्यात्मज्ञान में समावेश होता है । आत्मा में रहे मति आदि पांच प्रकार के ज्ञान का प्रतिपादन करने वाली पुस्तकों का भी अध्यात्मशास्त्र में समावेश होता है । कर्मग्रंथ, कम्म-पयडी आदि ग्रंथों से भी आत्मा का स्वरूप समझ में आता है, इसलिए उन ग्रंथों का भी अध्यात्मशास्त्र में समावेश किया

जा सकता है। आचारांगसूत्र, सूयगडांगसूत्र, स्थानांगसूत्र, उत्तराध्ययन, नंदीसूत्र, कल्पसूत्र, अनुयोगद्वार, विशेषावश्यक आदि पैंतालीस आगमों में जहाँ-तहाँ अध्यात्मज्ञान झलक रहा है। श्री हरिभद्रसूरिकृत योगदृष्टिसमुच्चय और योगबिंदु आदि ग्रंथों में अध्यात्मज्ञान उछलता दिखाई देता है। श्री उमास्वातिवाचक के तत्त्वार्थसूत्र और प्रशमरति प्रकरण आदि ग्रंथों में अध्यात्मज्ञान भरा हुआ है। जैन श्वेताम्बर शास्त्रों में अध्यात्मज्ञान का रस बहुत भरा पड़ा है। श्रीमान् मुनि सुंदरसूरिजी ने अध्यात्मकल्पद्रुम की रचना कर अध्यात्मज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता है; ऐसा सिद्ध कर दिया है।

वर्तमानकाल में अध्यात्म की आवश्यकता

अध्यात्मज्ञान की प्राप्ति इस काल में हो सकती है कि नहीं यह देखना है। कितने ही बालजीव कहते हैं कि, "इस काल में अध्यात्मज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती, अध्यात्मज्ञान की प्राप्ति तो बारहवें या तेरहवें गुणस्थानक में होती है।" इस तरह कहने वाले—उत्सूत्र भाषण करने को तैयार होते हैं। श्रीमद् यशोविजयजी उपाध्याय अध्यात्म ग्रंथ में कहते हैं कि **"चौथे गुणस्थानक से अध्यात्म की प्राप्ति होती है।"** जड़ और चेतन का भेद मालूम हो इस प्रकार के ज्ञान को भेदज्ञान कहते हैं। भेदज्ञान कहो या अध्यात्मज्ञान कहो, सारांश यह है कि अध्यात्मज्ञान या भेदज्ञान एक ही है, चौथे गुणस्थानक से अधिक पांचवें गुणस्थानक में विशेष प्रकार से अध्यात्मदृष्टि खिल सकती है। पांचवें गुणस्थान से छट्ठे गुणस्थान में अधिक अध्यात्मदृष्टि खुलती है। छट्ठे से अधिक सातवें में विशेष प्रकार से अध्यात्मदृष्टि खिल सकती है। ईर्षा, प्रमाद, आलस्य और [illegible] तथा अनित्यादि बारह भावनाओं का जो

अध्यात्मज्ञान में समावेश होता है, मनोगुप्ति का अध्यात्म में समावेश होता है। इस काल में गुप्ति की साधना के लिए शास्त्रों में कहा है। मनोगुप्ति की साधनारूप अध्यात्म चारित्र इस काल में किसी सीमा तक है; इसकी जो अपवाद करते हैं वे उत्सूत्र भाषण करते हैं। **इस काल में सातवें गुणस्थानक तक पहुँचा जा सकता है।** आत्मा के अध्यवसाय की शुद्धि ही आंतरिक अध्यात्मचारित्र है। **अध्यात्मज्ञान का अभ्यास कर अध्यात्मचारित्र प्राप्त करना चाहिए।**

नवतत्त्व का—सात नय से अभ्यास करने से अध्यात्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। नवतत्त्व के ज्ञान को अध्यात्मज्ञान ही कहा जाता है। उपमितिभव-प्रपंच ग्रन्थ में अध्यात्मज्ञान की मस्ती ही देखने में आती है। उपमितिभव प्रपंच ग्रन्थ के लेखक इस पंचम काल में ही हुए हैं। श्रीमद् यशोविजयजी उपाध्याय 'निश्चय दृष्टि चित्त धरीजे, पाले जे व्यवहार' इस वचन से अध्यात्मज्ञान रूप निश्चय दृष्टि धारण करने की इस काल में मनुष्यों को शिक्षा देते हैं, जिससे इस काल में चौथे गुणस्थानक से अध्यात्मज्ञान की साधना को साधा जा सकता है ऐसा निश्चय होता है।

जैन श्वेताम्बर वर्ग में **अध्यात्मज्ञान को विशेष रूप से प्रकाश में लाने वाले श्रीमद् यशोविजयजी उपाध्याय हैं।** अध्यात्मोपनिषद्, अध्यात्म परीक्षा, आदि ग्रन्थों के प्रणेता को सम्पूर्ण श्वेताम्बर जैन समाज पूज्य दृष्टि से देखता है। उन्होंने **जिस रीति से व्यवहार क्रिया कि पुष्टि की है उसी के अनुसार अध्यात्मज्ञान की भी पुष्टि की है।** और इस काल में अध्यात्म-ज्ञान की गुणस्थानक की अपेक्षा से प्राप्ति हो सकती है इसे स्वीकार किया है; जिससे अब अध्यात्मज्ञान को निश्चित मत कहकर

कितने ही एकान्त रूप में व्यवहारनय को ही मानते हैं उन्हें भी अध्यात्मज्ञान स्वीकार किये बिना छुटकारा नहीं। एकान्त व्यवहारनय को ही मानने से मिथ्यात्व लगता है, वैसे एकान्त निश्चयनय की व्याख्या सुनकर भड़कना नहीं चाहिए। व्यवहार और निश्चयनय को माने बिना सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती। अध्यात्म शास्त्र अपना कार्य करते हैं। क्रिया की शैली बताने वाले आचारांगादि शास्त्रों की जितनी आवश्यकता है उतनी ही आवश्यकता को सिद्ध करने वाले अध्यात्म शास्त्र हैं। ज्ञान बिना क्रिया की सिद्धि नहीं होती। "प्रथम ज्ञान और पीछे क्रिया करनी चाहिए।" ऐसा कहने में गम्भीर रहस्य है। क्रियाओं के रहस्य को समझे बिना क्रियाओं में मनुष्य को रस नहीं आता और क्रियाओं का सम्यक्‌रूप में आचरण भी नहीं कर सकते, इसलिए प्रथम क्रिया का ज्ञान करने पर ही धर्म की क्रियाओं में सरसता का अनुभव होता है; इत्यादि अनेक हेतु से ज्ञान को प्रथम श्रेणी में रखा गया है। **आत्मा को लक्ष्य में रखकर अर्थात् आत्मा की शुद्धि के लिए हरएक धार्मिक क्रिया की जाती है, इसीलिए पहले आत्मा को जानना चाहिए,** जिस आत्मा को लक्ष्य में रखकर धर्म क्रियायें की जाती हैं उस आत्मा के स्वरूप को नहीं समझा जावे तो 'वर बिना की बरात' की तरह क्रियाओं का फल बराबर नहीं हो सकता और किसके लिए कौन किस कारण से क्रिया करता है, इत्यादि समझ में नहीं आवे तो [illegible] और अपूर्व क्रिया की प्राप्ति नहीं हो सकती, इसलिए प्रथम आत्मा के स्वरूप को जानने के लिए अध्यात्मज्ञानशास्त्र शास्त्रों की और आत्मज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता सिद्ध होती है, इस सम्बन्ध में [illegible] प्रमाण व युक्ति से विचार किया जाता है।

को वे समझते हैं जिससे भिन्न-भिन्न आचारों के आचरण देख कर भी वे कदाग्रहवश होकर वाग्युद्ध शुरू नहीं करते, परन्तु बाद में होने वाले मनुष्य मूल उद्देश्य के ज्ञान के अभाव में परस्पर कदाग्रह कर धर्म समाज में विग्रह उत्पन्न करते हैं। अध्यात्मज्ञान को प्राप्त करने वाले तो प्राचीन क्रियाओं के रहस्य को अच्छी तरह जान सकते हैं, जिससे वे रागद्वेष जिन आचारों से क्रियाओं से मंद होता है उस प्रकार वे करते हैं। **अध्यात्मज्ञानियों को क्रिया नहीं करना चाहिए ऐसा कभी नहीं कहा जा सकता।** अध्यात्मज्ञानियों को अपने अधिकार के अनुसार अमुक क्रियाओं की आवश्यकता है। अध्यात्मज्ञानियों को गाडरिया प्रवाह की तरह क्रिया करने वाले और दोषों को नहीं छोड़ने वाले मनुष्यों की क्रियाओं की तरह अंध होकर क्रियायें करने की रुचि नहीं होती। परन्तु समझकर क्रिया करने की प्रवृत्ति जरूर होती है। जिससे वे अमुक क्रियायें करते समय एकांत रूप से गाडरिया प्रवाह की तरह क्रिया करने वालों से जुदे हो जाते हैं; और जिससे एकान्त क्रिया जड़, अध्यात्मज्ञानियों को समझे बिना क्रियानिषेधक ऐसे मनमाने विशेषण देने लगते हैं। अमुक अधिकार पर प्राप्त हुई क्रियाओं को समझ जाने पर भी करना नहीं, ऐसा अध्यात्मज्ञान कभी नहीं सिखाता। **धर्म की बाह्य क्रियायें—धर्म की उन्नति की क्रियायें या उपकार की क्रियायें—आदि क्रियाओं का निषेध कभी अध्यात्मज्ञान से नहीं होता।** अध्यात्मज्ञान से तो उलटे धार्मिक क्रियायें अच्छी तरह अधिकार के अनुसार की जा सकती हैं। अध्यात्मज्ञान से तो थोड़ी सी धर्म क्रिया भी बहुत फल देने वाली होती है। आध्यात्मिकज्ञान बाह्य क्रिया करते समय उसमें उपयोग रखना सिखाता है। आध्यात्मिक ज्ञान से

वास्तव में आत्मा शुद्ध परिणाम करने का कार्य करता है। धर्म की बाह्य क्रियाओं में आध्यात्मिक ज्ञान नई शक्ति देता है। प्रत्येक धर्म क्रिया द्वारा आत्मा में भावरस उढेलने वाला अध्यात्म ही है। अन्न खाते समय दांत अपना काम करते हैं और अन्न पचाने का कार्य अंतर की शक्ति करती है। इसी तरह आध्यात्मिक ज्ञान वास्तव में आत्मा के गुणों की शुद्धता का काम करता है और बाह्य क्रियायें मन को अंतर में भटकने के लिए निमित्त कारण रूप होती हैं। **आत्मा के परिणाम की शुद्धि करना यही अध्यात्म ज्ञान का काम है और आत्मा के गुणों की शुद्धि होना यही अध्यात्म चारित्र है।** अध्यात्मचारित्र में बाह्य धार्मिक क्रियाओं की निमित्तकारणता का नियम कदापि खंडित नहीं किया जा सकता, वैसे ही आध्यात्मिकज्ञान विना अंतर के परिणाम की शुद्धि न हो तब बाह्य क्रियायें निमित्त कारणता को प्राप्त नहीं होती, ऐसा कहा जा सकता है।

साम्य

ऊपर बताये अनुसार विचार किया जाय तो अध्यात्मज्ञान और अध्यात्मचारित्र की अत्यन्त आवश्यकता है, यह सहज ही समझ में आने वाली बात है। अध्यात्मज्ञान से दूसरों की आत्मा अपनी आत्मा के समान मालूम होती है और इससे अपनी आत्मा की तरह अन्य आत्माओं पर प्रेम और दया की जा सकती है तथा अन्य जीवों का भला करने में आत्मा प्रेरित होती है। दूसरों की आत्मा की निन्दा अवहेलना करने से उनकी आत्मा को दुःख होता है, जिससे उनकी हिंसा होती है ऐसा अध्यात्मज्ञान से मालूम पड़ता है। सम्पूर्ण जगत् के जीव अपने समान हैं ऐसा ज्ञान कराने वाला अध्यात्मज्ञान ही

वने ग्रन्थों की महत्ता भविष्य काल के मनुष्य जान सकते हैं। वक्ता वर्तमान काल के मनुष्यों पर असर कर सकता है और ग्रन्थ तो भविष्य में विशेष असर करने में समर्थ होते हैं। **किसी भी प्रकार का ज्ञान दुनिया में बेकार नहीं है, फिर अध्यात्मज्ञान तो दुनिया में कभी बेकार हो ही नहीं सकता।** श्रीमद् यशोविजयजी उपाध्याय तो जोर देकर कहते हैं कि—सब प्रकार के ज्ञान में अध्यात्मज्ञान श्रेष्ठ है। मदोन्मत्त हाथी जैसे अंकुश से वश में होता है वैसे चंचल मन भी अध्यात्मज्ञान से वश में होता है। मनरूपी पारे को मारने के लिए अध्यात्मज्ञानरूपी औषधी के समान अन्य कोई औषध नहीं है। पांचों इंद्रियां अपनी इच्छा के अनुसार प्रवृत्ति करती हैं, परन्तु उन पर काबू पाने के लिए अध्यात्मज्ञान है। मनरूपी बंदर कभी अपने स्थान पर नहीं रह सकता, फिर भी उसे अध्यात्मज्ञान की सांकल से आत्मरूप घर में बांधा जा सकता है। आत्मसृष्टि में प्रवेश करने की इच्छा वालों को तो अवश्य अध्यात्मज्ञान प्राप्त करना चाहिए, जिसका आत्मा पर लक्ष नहीं है वह मोह को जीतने में समर्थ नहीं हो सकता। मन को वश में करने के उपाय बताने वाले शास्त्रों को अध्यात्मशास्त्र कहते हैं। अन्य शास्त्रों में तो सामान्य बुद्धिमान पुरुष भी प्रवेश करते हैं, परन्तु सूक्ष्म बुद्धि के बिना अध्यात्मशास्त्र में प्रवेश हो ही नहीं सकता। वैदिक धर्मवाले उपनिषद् और भगवद्गीता को अध्यात्मशास्त्र कहते हैं और वे अध्यात्मशास्त्रों पर विशेष प्रेम रखते हैं। जैन शास्त्रों में सम्यक्‌रूप से अध्यात्मतत्त्व का विवेचन किया गया है।

विचारों से आचारों की उत्पत्ति

अध्यात्मशास्त्र पढ़ना यानी सूक्ष्म अध्यात्मशास्त्रों के अनु-

सार आचरण हो जाय ऐसा मानना बड़ी भूल है। ज्ञान और आचार प्रायः एकदम साथ उत्पन्न नहीं होते। प्रथम तो विचार उत्पन्न होते हैं। विचार जिस तरह के होते हैं उसी तरह के आचार उत्पन्न करने में वे समर्थ होते हैं। विचार आचार का कारण है। विचार विद्युत शक्ति से भी अधिक बलवान है। भिन्न भिन्न प्रकार के विचार मस्तिष्क में उत्पन्न होकर अपने संस्कार छोड़ते हैं और वे अपने जैसे विचार उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं, इसलिए मनुष्यों को विना विवेक के चाहे जिस प्रकार के विचार नहीं करना चाहिए। शुद्ध विचार शुद्ध आचार उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं और अशुद्ध विचार अशुद्ध आचार उत्पन्न करते हैं। जिन्हें अपना आचार सुधारना हो उन्हें मानसिक विचार-सृष्टि प्रतिपादक अध्यात्मशास्त्रों का अभ्यास करना चाहिए। आचार के मुख्य उद्देश्य को समझाने वाले अध्यात्मशास्त्र हैं। सुविचारों से सुआचार की प्रणालिकाएं उत्पन्न की जा सकती हैं। श्रीमद् महावीर प्रभु ने केवल-ज्ञान के बल से साधु और श्रावक वर्ग योग्य भिन्न भिन्न आचारों का प्रतिपादन किया है। प्रथम कोई भी काम करना हो तो तत्सम्बंधी प्रथम विचार मनुष्यों के वर्तमान काल में दीखते हैं वह पूर्व विचारों का फल है ऐसा अध्यात्मशास्त्रों से विचारकों को मालूम हुए विना नहीं रहेगा। किसी भी मनुष्य का अशुद्ध आचार बदलना हो तो शुद्ध विचार उसके हृदय में उत्पन्न किए विना वे नहीं बदलते। आचारों के नये नये भेदों को उत्पन्न कराने वाले विचार हैं। किसी भी जगह जाने के लिए मनुष्य रवाना होता है उससे पहले उसे विचार करना पड़ता है। श्रावक के आचार उत्पन्न होने से पूर्व विचारों का अस्तित्व ज़रूर होता है। विचारों को व्यवस्थित किए विना अमुक

प्रकार के कार्य को सिद्ध करने में समर्थ नहीं होता। शरीर और इंद्रियों के बिना आचारों को मान्य नहीं कर सकते वैसे आत्मा के बिना विचार अर्थात् ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। अध्यात्मज्ञान से यह सब समझ में आता है और आत्मा के सद्गुण प्राप्त करने की तरफ लक्ष जाता है। आत्मज्ञान से अच्छा सुख प्राप्त करने का विवेक जाग्रत होता है।

अध्यात्मज्ञान से विवेक

अध्यात्मज्ञान से अपना और दूसरों का विवेक होने से मोहवन में परिभ्रमण करने की प्रवृत्ति का नाश करने की प्रवृत्ति होती है। इलाचीकुमार को बांस पर नाचते हुए केवलज्ञान उत्पन्न कराने वाली वस्तु वस्तुतः विचार करें तो अध्यात्मज्ञान ही सिद्ध ठहरता है। हृदय में धर्म के अपूर्व प्रेम को उत्पन्न कराने वाला अध्यात्मज्ञान है। गजसुकुमाल मुनि को समता भाव में लाने वाला आंतरिक विचाररूप अध्यात्मज्ञान ही था। स्कंध मुनि के शिष्यों को समभाव में लीन कर शरीर का भान भुलाकर मुक्त कराने वाला अध्यात्मज्ञान था। प्रसन्नचन्द्र राजर्षि को शत्रु के प्रति समभाव में लाकर केवलज्ञान प्राप्त कराने वाला भावनामय अध्यात्मज्ञान था। जो-जो मुनि अध्यात्मज्ञान की उपासना करते हैं वे बाह्य दुनिया को स्वप्न समान क्षणिक मानकर, आंतरिक ज्ञानादि लक्ष्मी को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। कोई भी मनुष्य, अध्यात्मज्ञान के बिना मोक्ष मार्ग की ओर अग्रसर नहीं हो सकता, श्वासोच्छ्वास और प्राण का जैसा निकट का सम्बन्ध है वैसे आनंद और अध्यात्मज्ञान का भी निकट का सम्बन्ध है। जल के बिना जैसे वृक्ष के सारे अवयवों

का पोषण नहीं होता वैसे अध्यात्मज्ञान के विना आत्मा के सब गुणों का पोषण नहीं होता; सूर्य की किरणें अपवित्र वस्तुओं को पवित्र करने में समर्थ हैं वैसे अध्यात्मज्ञान भी अपवित्र आत्मा को पवित्र करने में सक्षम है। अध्यात्मज्ञान से जन्म, जरा और मरण किसी भी हिसाव में नहीं गिने जाते। सूर्य की किरणें चाहे जैसे वादलों में से होकर पृथ्वी पर प्रकाश करने में समर्थ होती हैं, वैसे चाहे जैसी आशाओं के वंधनों को तोड़ने में अध्यात्मज्ञान समर्थ है। **अध्यात्मज्ञान रस के नशे से जिनके हृदय आनंदित हुए हैं उन्हें, अन्य जड़ पदार्थों द्वारा सुख प्राप्त करने की रुचि नहीं रहती।** प्रत्येक मनुष्य सुख प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता है। वास्तविक सुख प्राप्त करने के लिए हृदय की प्रेरणा होती है। मनुष्यों को सच्चा ज्ञान हो तो वे क्षणिक सुखों की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार के प्रपंच नहीं करेंगे और आत्मिक सुख प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करेंगे।

क्रियायें करनी चाहिए

अध्यात्मज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक सज्जनों को धार्मिक व्यवहार अर्थात् **आचारों को नहीं छोड़ना चाहिए**; अध्यात्म-ज्ञान अपनी दिशा वताता है परन्तु वे धर्मक्रिया के अनादर को सूचित नहीं करता। जो गुरु परम्परा से आत्मज्ञान प्राप्त करते हैं, उन्हें धर्मक्रियाएं करने में स्थिरता के योग से विशेष प्रकार से रस आता है। अध्यात्मज्ञान के अभ्यासियों के आचार उत्तम होते हैं और उनकी आत्मा प्रतिदिन मोक्षमार्ग के प्रति प्रयाण करती है। **अध्यात्ममत परीक्षा ग्रंथ में श्रीमद् यशोविजयजी उपाध्याय, शुष्क अध्यात्मी जो कि साधुओं के**

प्रतिपक्षी बनते हैं और व्रतों में धर्म नहीं मानते तथा साधुओं को नहीं मानते, उन्हें अच्छी तरह उपदेश दिया है। अध्यात्मशास्त्र का अभ्यास करने वालों को अध्यात्मज्ञान में रस आता है जिससे वे अध्यात्मज्ञान का वर्णन करे यह स्वाभाविक है, परन्तु जिज्ञासुओं को समझना चाहिए कि धर्मक्रिया के व्यवहार का निषेध हो ऐसा उपदेश कभी नहीं करना चाहिए। एक दिन में किसी ज्ञानी की भी, एक समान परिणति नहीं रहती। अध्यात्मज्ञानियों की भी एक समान परिणति नहीं रहती। उच्च परिणाम की धारा से पड़ते हुए भी व्यवहार मार्ग शरणभूत होता है। **व्यवहार धर्म माने बिना निश्चयधर्म की सिद्धि भी नहीं होती।** व्यवहारधर्म के अनेक भेद हैं उनमें अधिकारी भेद से सर्व भेदों का ज्ञान करना चाहिए। व्यवहार कारण है और निश्चय कार्य है; अध्यात्मज्ञान से जिन्होंने तत्त्वों के सूक्ष्म रहस्यों को जाना है वे, तीर्थंकर, गणधर आदि प्रतिपादित आवश्यकादि धर्माचारों का उत्तम रहस्य जान सकते हैं और जिससे वे उसी तरह प्रवृत्ति कर सकते हैं। **जैन शास्त्रों का गुरुपरंपरा से ज्ञान प्राप्त कर जिन्होंने आत्मतत्त्व की विचारणा की है वे निमित्त कारणरूप व्यवहारधर्म को कदापि उत्थापना नहीं करते। अध्यात्मज्ञान में विशेष विचरण होना हो तब भी व्यवहार धर्म का उच्छेद नहीं करना।** कोई मनुष्य एम. ए. की कक्षा में गया हो, वह पहली पुस्तक नहीं पढ़ता—ऐसा पहली पुस्तक के अधिकारियों को नहीं कह सकता—एम. ए. की परीक्षा पास करने वालों को पहली पुस्तक की जरूरत नहीं है यह तो ठीक है, परन्तु इससे पहली पुस्तक को छोड़ देना ऐसा कहना योग्य नहीं कहा जा सकता; पहली पुस्तक पढ़ने वाले तो बहुत हैं, ऐसा सोचकर

कारण कार्य भाव की परंपरा का नाश करने के लिए उपदेश नहीं देना—ऐसा अध्यात्मज्ञान के अभ्यासियों को सूचित किया जाता है। अनुभवी पुरुषों ने अध्यात्मज्ञान को कच्चे पारे के समान कहा है, इसलिए गुरुगम से अध्यात्मज्ञान को पचाकर हृदय में उतारना चाहिए। कितनी वार जिनमें नीति के गुणों की योग्यता नहीं होती ऐसे मनुष्य अध्यात्मज्ञान की सीढ़ी पर चढ़ते हैं जिससे उन्हें फायदा नहीं होता—पहली कक्षा में पढ़ने वाला दूसरी कक्षा में न वैठकर छठी कक्षा में वैठे तो वह दोनों तरफ से भ्रष्ट होता है इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं। अध्यात्म-ज्ञान के जो अधिकारी हैं उन्हें अध्यात्मज्ञान सिखाना चाहिए। पहली कक्षा में पढ़ने वाले विद्यार्थी एम. ए. पास विद्यार्थियों की मजाक करे और कहे की एम. ए. की कक्षा का ज्ञान व्यर्थ है, तो उनके ऐसा कहने से एम. ए. की कक्षा और उनका ज्ञान व्यर्थ नहीं हो जाता, वैसे व्यवहार मार्ग की प्रथम सीढ़ी पर ही जो चढ़ने योग्य हैं वे अध्यात्मज्ञानियों के सूक्ष्म वोध को नहीं समझ सकते और उन्हें गलत समझे इससे कोई अध्यात्मज्ञान के अभ्यासी गलत सिद्ध नहीं होते। इस पर से सारांश यह लेना है कि—**अध्यात्मज्ञान के अभ्यासियों को शुष्कता प्राप्त न हो और अध्यात्मज्ञान की निंदा न हो ऐसा उपयोग रखना चाहिए।** ज्ञानियों के व्यवहार और आचारों में और मूर्खों के व्यवहार और आचारों में भिन्नता होती है; ज्ञानी के सदाचारों का वाल-जीवों को अनुकरण करना चाहिए; कितनी ही वार ऐसा होता है कि अध्यात्मशास्त्रज्ञान का थोड़ासा अभ्यास कर वाल-जीव अपनी एक टोली आध्यात्मिक नाम की वनाने का प्रयत्न करते हैं और व्यवहारमार्ग के भेदों की उत्थापना हो ऐसा उपदेश देते हैं, इससे वे अध्यात्मज्ञानी नहीं गिने जाते वरन् उलटा दूसरों के साथ झगड़कर अध्यात्मज्ञान और शुद्ध व्यवहार से भी दूर हो जाते हैं।

अध्यात्मज्ञान से गच्छ को बांधा नहीं जा सकता। व्यवहारनय के अवलम्बन से टोला इकट्ठा कर व्यवहारधर्मनय का खण्डन करना यह वदतोव्याघात जैसा है, जैन धर्म का बंधारण, आचार, उपदेश और गुरु-शिष्य का सम्बंध, वंदन-पूजन इत्यादि सब की सिद्धि, वास्तव में व्यवहारनय को स्वीकार किए बिना नहीं होती। गुरु-शिष्य का सम्बंध, वंदन, पूजन, यात्रा, दर्शन आदि व्यवहारधर्म के आचारों का पालन करते हुए भी, व्यवहारधर्मनय का खण्डन कर निश्चय धर्म के विचारों का एकांत प्रतिपादन करना यह बात कभी सम्भव नहीं है। जो अपनी माता का स्तनपान कर बड़ा होने पर ऐसा कहे कि "माता का दूध नहीं पीना" यह बात कैसे सम्भव हो, चाहे वह स्वयं दूध पीने का अधिकारी नहीं है परन्तु अन्य बालक तो हैं। बालकों को यदि दूध पीने को मना करें तो कैसा बुरा लगता है? व्यवहारधर्म के अनेक प्रकार के आचरणों को स्वीकार कर उत्तम अध्यात्मज्ञान मार्ग में प्रवेश किया जा सकता है। अध्यात्मज्ञान का स्वाद लेकर बाद में दूसरों को अधिकार योग्य धर्माचरणों का निषेध करने लगना! यह शास्त्र से तो क्या परन्तु नीति के मार्ग के भी विरुद्ध कार्य है—ऐसा कहा जा सकता है। अध्यात्मज्ञान के जिज्ञासुओं को नीति आदि व्यवहार का कभी त्याग नहीं करना चाहिए। शुष्क अध्यात्म-ज्ञान की धुन में उतर कर बाह्य विवेक—कर्त्तव्य से कभी भ्रष्ट नहीं होना चाहिए, इस पर सामान्य दृष्टान्त यहां बताया जाता है।

व्यवहार धर्म से भ्रष्ट होने वाले एक साधु का दृष्टांत

एक संन्यासी अद्वैतवाद के ज्ञान की धुन में गव उतर

गया, उसे एक भक्त ने भोजन का निमंत्रण दिया उससे पहले सन्यासी के पैर में कीचड़ लगा हुआ था, इसलिए गृहस्थ भक्त ने कहा कि संयासी महाराज ! जरा अपने पैर साफ कर लो। सन्यासी ने कहा, ज्ञान गंगा में मैंने पैर साफ कर लिए हैं। गृहस्थ समझ गया कि सन्यासी बिलकुल आचार से दूर हो गया है, इसलिए उसने सन्यासी को शिक्षा देने के लिए सन्यासी को अनेक प्रकार के मिष्ठान जिमाने के बाद खूब पकोड़ियाँ खिलाईं और उसे एक कमरे में सुलाकर ताला लगा दिया। कुछ समय बाद सन्यासी की नींद खुली और दरवाजा खोलने का प्रयत्न किया परन्तु दरवाजा नहीं खुला। प्यास से उसका मन आकुल-व्याकुल हुआ तब गृहस्थ ने कहा कि सन्यासी महाराज ! चिल्ला क्यों रहे हो ? सन्यासी ने कहा कि जल बिना मेरे प्राण चले जायंगे। गृहस्थ ने कहा कि कीचड़ आदि जब ज्ञान गंगा में धो डालते हो तब पानी भी ज्ञान गंगा में क्यों नहीं पीते ? गृहस्थ के इस प्रकार युक्तिपूर्वक वचन सुनकर सन्यासी ठिकाने आया। इस दृष्टांत का सारांश यह है कि, कभी शुष्क अध्यात्मज्ञानी नहीं बनना, तथा शुष्क क्रियावादी नहीं बनना। इतना तो कहना आवश्यक है कि, क्रियाओं का, ज्ञान प्राप्त किए बिना कितने ही मनुष्यों ने क्रिया के प्रति प्रवृत्ति की हो; परन्तु नीति के सद्गुण तथा उत्तम आचारों की कमी के कारण उनकी क्रियाओं को देखकर कितने ही संदिग्ध मनुष्य क्रिया मार्ग के व्यवहार से पराङ्मुख होते हैं। अध्यात्मज्ञान प्राप्त कर धार्मिक क्रियाओं का रहस्य समझते हुए क्रियाओं की अधिकारी भेद से उत्तमता सम्बन्धी किसी प्रकार की शंका नहीं रहती। अध्यात्मज्ञान से स्थूल और सूक्ष्म भूमिका में अर्थात् अंतर में और बाहर में उत्तम

प्रेम से धर्म प्रवृत्ति की जा सकती है। अध्यात्मज्ञान में सब प्रकार की श्रेष्ठता जानकर सब ज्ञानियों ने उसे प्रथम श्रेणी में गिना है। अनेक प्रकार के अध्यात्मशास्त्रों का अभ्यास कर आत्मा को समझना—यही जगत् में मुख्य कर्तव्य है।

सम्यक्त्व प्राप्ति

जड़ और चेतन का भिन्न-भिन्न प्रकार से ज्ञान होने पर ही सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। स्थूल जड़ पर्यायों की अनित्यता और आत्मा से भिन्नत्व का निश्चय करने के बाद, पंडित मनुष्य अपनी आत्मा में ही आनन्द मानता है। भेदज्ञान की प्राप्ति होने पर बाह्य शरीर आदि वस्तु पर ममत्वभाव का अभ्यास दूर होता है। गृहस्थावास में स्थित मनुष्य बाह्य व्यवहारादि कार्य करता है परन्तु यदि वह भेदज्ञान (अध्यात्म) को प्राप्त करता है तो वह बाह्य पदार्थ में नहीं फंस सकता और पृथ्वीचन्द्र तथा गुणसागर की तरह किसी भी समय उत्तम निर्लेप दशा प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। सूर्य के साथ प्रेम करने वाला कमल स्वयं जल में निर्लेप रह सकता है। वैसे आत्मा के गुणों का पोषण करने वाला अध्यात्मज्ञान जिसके हृदय में जाग्रत हो जाता है उसका मन अपनी आत्मा के सम्मुख रहता है। अध्यात्मज्ञान से आत्मा का वीर्य जो अनादिकाल से परभाव में विचरण कर रहा था वह, परभावमय वीर्य भी शुद्ध हो जाता है। आत्मा के जो जो गुण वा पर्याय परभाव के साथ विचरण कर रहे होते हैं, उनका अशुद्ध परिणमन टालकर शुद्ध परिणमन करने वाला वास्तव में अध्यात्मज्ञान है। बाह्यज्ञान में बाह्य पदार्थों में रहता [illegible] रमता है। क्योंकि अध्यात्मज्ञान से आत्मा को शुद्ध

धर्म विना जड़ पदार्थों में रहना अच्छा नहीं लगता। दुनिया के हरएक देश और उसमें भी यूरोप, अमेरिका आदि देशों में बाह्यज्ञान से मनुष्य, प्रवृत्ति मार्ग में कूद पड़े हैं और इस कारण वे अन्य देशों को भी प्रवृत्तिमार्ग में घसीटेंगे अन्त में परिणाम यह आयगा कि बाह्यज्ञान से प्रवृत्ति मार्ग का इतना बोलबाला होगा कि, इससे मनुष्य स्वार्थ, मोजमजा, भोग और इच्छा के उपासक बनेंगे और जिससे कषाय आदि का साम्राज्य होगा। दुनिया का प्रवृत्ति मार्ग और विषयभोग, मोज शोख, स्वार्थ और कषाय आदि के सामने अपना बल अजमाने वाला वस्तुतः अध्यात्मज्ञान है। अध्यात्मज्ञान की प्राप्ति से मनुष्य प्रवृत्तिमार्ग में धीमी गति से प्रवृत्ति करता है और वे हाय धन! हाय धन! कहकर धन के पुजारी नहीं बनते। बाह्य इच्छाओं का नाश करनेवाला और आत्मा में सुख का निश्चय कराने वाले अध्यात्मज्ञान का जो जगत् में प्रचार हो तो दुनिया से पाप की प्रवृत्ति बहुत कम हो जाय। अध्यात्मज्ञान से आत्मा के सामने मन की प्रवृत्ति मुड़ती है, जिससे बाह्य पदार्थों में अहंममत्व नहीं रहता। प्रारब्धकर्म के अनुसार बाह्य पदार्थों का आहार आदि रूप में उपयोग होता है। फिर भी उसमें अध्यात्मज्ञान के प्रताप से बंधन नहीं होता। ज्ञानी को राग के मंद-मंदतर परिणाम से बाह्य पदार्थों का भोग होता है। मनुष्य, अपनी उत्तमता को पूरी तरह समझें तो वह अन्य जीवों का नाश मन, वचन और काया से करने का प्रयत्न नहीं करेगा। अनेक पापी मनुष्य अध्यात्मज्ञान के अभाव में हिंसा के घोर धंधे करके हजारों पशुओं और पक्षियों के प्राणों का नाश करते हैं; यदि उन्हें जिनेश्वर वाणी के अनुसार अध्यात्मज्ञान हो तो प्राणियों की हिंसा जिसमें होती है ऐसे कतलखाने आदि हिंसक यंत्रों का धंधा नहीं करेंगे। इस

और नमस्कार कर ब्रह्मचर्चा करने लगा। ब्रह्मज्ञान की चर्चा में उसे बहुत आनन्द आता था। सुमति ने मन से कुछ विचार कर महात्मा से निवेदन किया कि, हे महात्मन्! आपका शिष्य राजपुत्र भद्रक, आपके दिए ब्रह्मज्ञान के उपदेश से प्रतिदिन पांच कोड़ों की मार खाता है; इसलिए कृपा कर अब मेरे भाई के दुःख को दूर करें; आप ज्ञानी हैं, आपकी कृपा से मेरे भाई का दुःख दूर हो जायगा ऐसी मुझे आशा है। लोगों में आपके शिष्य का अपमान होता है, वह आपका होना है ऐसा मैं समझती हूं, इसलिए कुछ भी उपाय कर मेरे भाई पर कोड़ों की मार के दुःख को दूर करें। राजपुत्री सुमति की यह बात सुनकर महात्मा बोले कि—हे सुमति "तेरा भाई पांच कोड़ों की मार खाता है यह न्याय की बात है, जो मनुष्य मित्रों की बात मूर्खों में करता है उसको पांच कोड़े पड़ना ही चाहिए, ब्रह्मज्ञान की बात ब्रह्मज्ञान के अधिकारियों के लिए है; तेरा भाई ब्रह्मज्ञान की बात व्यवहार कार्य में करता है इसलिए उसको व्यवहार अकुशलता के कारण पांच कोड़ों की मार पड़ती है, वह न्याय संगत है। राजपुत्री तुम लड़की हो परन्तु मित्रों की बात मूर्खों में नहीं करती है इसलिए तुझे ब्रह्मज्ञान का आनन्द मिलता है, फिर व्यवहार दशा में भी तेरा तिरस्कार नहीं होता है" महात्मा के उक्त वचन राजपुत्री सुमति के दिल में बराबर बैठ गए और इसलिए वह राजपुत्र भद्रक को कहने लगी कि—भाई! इस विषय में महात्मा के वचन के अनुसार तू व्यवहारकुशल नहीं होने से, ब्रह्मज्ञानी होने पर भी पांच कोड़ों की मार खाता है। ज्ञानियों के अनुभवज्ञान की बातें योग्य जीवों के साथ करने की होती है! यदि तू व्यवहार कुशल होता तो तेरी यह दशा नहीं होती, इसलिए अब दुनिया की

रीति के अनुसार अंतर से अलग रहकर काम करने की आदत डाल, कि जिससे ब्रह्मज्ञान का अनादर न हो। अनधिकारी को प्राप्त हुए ब्रह्मज्ञान से, ब्रह्मज्ञान का लोग तिरस्कार करते हैं और जिससे ब्रह्मज्ञानी दुनिया में पागल गिना जाता है। राजपुत्र भद्रक के मन में भी यह बात जम गई और उसने अपने व्यवहार अनभिज्ञता के दोष को समझ लिया। राजपुत्र ने महात्मा को और अपनी बहिन को कहा कि अब से मैं व्यवहार में कुशल होऊंगा और ब्रह्मज्ञान का अनादर नहीं होने दूंगा। दूसरे दिन राजपुत्र भद्रक, राजा की सभा में गया और राजा को नमस्कार कर और व्यवहार में व्यवहारकुशलता का बर्ताव कर राजा से क्षमा मांगी और प्रारब्ध योग से प्राप्त कार्यों को व्यवहार से करने लगा जिससे राजा उस पर प्रसन्न हुआ और कहने लगा कि; भद्रक युवराज का पागलपन अब दूर हो गया है और वह समझदार हो गया है। उसे कोड़े मारना बन्द करने का आदेश दे दिया गया और यह घोषणा कर दी गई कि सब युवराज की आज्ञा का पालन करें। युवराज सांसारिक काम सांसारिक व्यवहार के अनुसार करने लगा और समय मिलने पर ब्रह्मज्ञान का आनन्द भी लेने लगा जिससे वह सुखी हुआ।

युवराज भद्रक का दृष्टांत सुनकर अध्यात्मज्ञानी बहुत कुछ सार ले सकते हैं। अध्यात्मज्ञान की बात मूर्खों में करने से मूर्ख अध्यात्मज्ञान नहीं समझ सकते वरन् वे अध्यात्मज्ञानियों को कोड़े मारने जैसा व्यवहार करते हैं। व्यवहारकुशल और शुष्कतारहित अध्यात्मज्ञानी व्यवहार में व्यवहार के अनुसार अपने अधिकार का उपयोग करते हैं और निश्चय से अध्यात्मस्वरूप में दत्तचित्त होते हैं। इसलिए दुनिया में

श्रीर नमस्कार कर ब्रह्मचर्चा करने लगा। ब्रह्मज्ञान की चर्चा में उसे बहुत आनन्द आता था। सुमति ने मन से कुछ विचार कर महात्मा से निवेदन किया कि, हे महात्मन्! आपका शिष्य राजपुत्र भद्रक, आपके दिए ब्रह्मज्ञान के उपदेश से प्रतिदिन पांच कोड़ों की मार खाता है; इसलिए कृपा कर अब मेरे भाई के दुःख को दूर करें; आप ज्ञानी हैं, आपकी कृपा से मेरे भाई का दुःख दूर हो जायगा ऐसी मुझे आशा है। लोगों में आपके शिष्य का अपमान होता है, वह आपका होता है ऐसा मैं समझती हूं, इसलिए कुछ भी उपाय कर मेरे भाई पर कोड़ों की मार के दुःख को दूर करें। राजपुत्री सुमति की यह बात सुनकर महात्मा बोले कि—हे सुमति "तेरा भाई पांच कोड़ों की मार खाता है यह न्याय की बात है, जो मनुष्य मित्रों की बात मूर्खों में करता है उसको पांच कोड़े पड़ना ही चाहिए, ब्रह्मज्ञान की बात ब्रह्मज्ञान के अधिकारियों के लिए है; तेरा भाई ब्रह्मज्ञान की बात व्यवहार कार्य में करता है इसलिए उसको व्यवहार अकुशलता के कारण पांच कोड़ों की मार पड़ती है, वह न्याय संगत है। राजपुत्री तुम लड़की हो परन्तु मित्रों की बात मूर्खों में नहीं करती है इसलिए तुझे ब्रह्मज्ञान का आनन्द मिलता है, फिर व्यवहार दशा में भी तेरा तिरस्कार नहीं होता है" महात्मा के उक्त वचन राजपुत्री सुमति के दिल में बराबर बैठ गए और इसलिए वह राजपुत्र भद्रक को कहने लगी कि—भाई! इस विषय में महात्मा के वचन के अनुसार तू व्यवहारकुशल नहीं होने से, ब्रह्मज्ञानी होने पर भी पांच कोड़ों की मार खाता है। ज्ञानियों के अनुभवज्ञान की बातें योग्य जीवों के साथ करने की होती है! यदि तू व्यवहार कुशल होता तो तेरी यह दशा नहीं होती, इसलिए अब दुनिया की

रीति के अनुसार अंतर से अलग रहकर काम करने की आदत डाल, कि जिससे ब्रह्मज्ञान का अनादर न हो। अनधिकारी को प्राप्त हुए ब्रह्मज्ञान से, ब्रह्मज्ञान का लोग तिरस्कार करते हैं और जिससे ब्रह्मज्ञानी दुनिया में पागल गिना जाता है। राजपुत्र भद्रक के मन में भी यह बात जम गई और उसने अपने व्यवहार अनभिज्ञता के दोष को समझ लिया। राजपुत्र ने महात्मा को और अपनी बहिन को कहा कि अब से मैं व्यवहार में कुशल होऊंगा और ब्रह्मज्ञान का अनादर नहीं होने दूंगा। दूसरे दिन राजपुत्र भद्रक, राजा की सभा में गया और राजा को नमस्कार कर और व्यवहार में व्यवहारकुशलता का वर्ताव कर राजा से क्षमा मांगी और प्रारब्ध योग से प्राप्त कार्यों को व्यवहार से करने लगा जिससे राजा उस पर प्रसन्न हुआ और कहने लगा कि; भद्रक युवराज का पागलपन अब दूर हो गया है और वह समझदार हो गया है। उसे कोड़े मारना बन्द करने का आदेश दे दिया गया और यह घोषणा कर दी गई कि सब युवराज की आज्ञा का पालन करें। युवराज सांसारिक काम सांसारिक व्यवहार के अनुसार करने लगा और समय मिलने पर ब्रह्मज्ञान का आनन्द भी लेने लगा जिससे वह सुखी हुआ।

युवराज भद्रक का दृष्टांत सुनकर अध्यात्मज्ञानी बहुत कुछ सार ले सकते हैं। अध्यात्मज्ञान की बात मूर्खों में करने से मूर्ख अध्यात्मज्ञान नहीं समझ सकते वरन् वे अध्यात्मज्ञानियों को कोड़े मारने जैसा व्यवहार करते हैं। व्यवहारकुशल और शुष्कतारहित अध्यात्मज्ञानी व्यवहार में व्यवहार के अनुसार अपने अधिकार का उपयोग करते हैं और निश्चय से अध्यात्मस्वरूप में दत्तचित्त होते हैं। इसलिए दुनिया में

वे समझदार माने जाते हैं. कितने ही शुष्क अध्यात्मज्ञानी व्यवहार कुशलता के अभाव में ज्ञान की बातें मूर्खों में कर अध्यात्मज्ञान की हंसी कराते हैं। **निश्चय दृष्टि चित्त धारजी पाले जे व्यवहार; पुण्यवंत ते पामशेजी भवसमुद्र नो पार।** श्री उपाध्यायजी के इन वचनों का परमार्थ हृदय में उतार कर अध्यात्मज्ञानी वर्ताव करें तो अनेक मनुष्यों को वे अध्यात्मज्ञान का स्वाद चखा सकते हैं। अध्यात्मज्ञानियों की सूक्ष्म बुद्धि होने से वे आत्मा में गहरे उतर जाते हैं इसलिए उन्हें व्यवहार में रस नहीं आता; फिर भी उनको जिस-जिस अवस्था में अधिकारभेद से उचित व्यवहार हो उसे नहीं छोड़ना चाहिए। अध्यात्मज्ञानियों को भी अध्यात्मज्ञान का प्रसार सारी दुनिया में फैले ऐसा भाव हो वहां तक उन्हें व्यवहारमार्ग का अमुक अधिकार प्रमाण से अवलंबन लेना चाहिए। **खाना, पीना, लघु नीति और बड़ी नीति तथा नींद और आजीविकादि काम जहां तक करने पड़े वहां तक, व्यवहारधर्म क्रियाओं को भी अमुक दशा तक करना चाहिए।** व्यवहार कुशलता की सूचना करने के बाद अध्यात्मज्ञान की उपयोगिता का वर्णन किया जाता है। अध्यात्मज्ञान वास्तव में अमृत-रस के समान है। अध्यात्मज्ञानरूप अमृतरस का पान करने से जन्म, जरा और मृत्यु का चक्र दूर होता है।

प्रत्येक धार्मिक क्रिया में अध्यात्मरस डाला जाता है। किसी भी धार्मिक क्रिया में गहरे उतर कर देखें तो उक्त प्रकार के रहस्य का बोध होता है। जो आत्मा के शुभादि अध्यवसायों को उत्पन्न करते हैं, उन-उन क्रियाओं को भी आरोपित कर अध्यात्मरूप में बताई जाती है। वस्तुतः विचार करें तो आत्मा के ज्ञानादि गुण ही अध्यात्मरूप से कहे जा सकते हैं।

आत्मा का संयम

आत्मा की शक्तियों को बताने वाले अध्यात्मशास्त्रों के प्रणेता आत्मतत्त्व का अनुभव कर के ही-उन बातों को बताई हैं। आत्मतत्त्व का अनुभव कराने के लिए योगी एकान्त स्थान पसन्द करते हैं। कोई गुफा में जाकर आत्मतत्त्व का ध्यान करते हैं। कोई अष्टांगयोग की साधनप्रणाली द्वारा आत्मतत्त्व का ध्यान करते हैं। परभाव में जिस-जिस आत्मा की शक्तियों का परिणमन हुआ है उसे, आत्मसात करना यही अध्यात्मक्रिया का मुख्य उद्देश्य होता है। **मनोद्रव्य द्वारा भावमन की शुद्धिकर राग-द्वेष दशा को त्यागकर उत्तम अध्यात्मज्ञानी प्रयत्न करते हैं।** आत्मा की जैसे-जैसे शुद्धि होती है वैसे-वैसे अध्यात्मतत्त्व का प्रकाश होता है। जैनधर्म का प्रचार करने में अध्यात्मज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता है। एक विद्वान सज्जन कहते हैं कि, "अध्यात्मतत्त्व के विद्वान धर्म का प्रचार किन-किन उपायों से करना होता है इसके वे अच्छे जानकार होने से, वे आत्मा की शक्तियों का उन-उन उपायों को काम में लेकर धर्मप्रचार में सफलता प्राप्त करते हैं।" आत्मतत्त्व में विशेष गहरे उतरकर उसका अनुभव करने से प्रत्येक मनुष्यों की आत्मा की प्रवृत्तियों को बोध दे सकते हैं। आत्मा के शुभादि अध्यवसायों पर संटों अभ्यास करने से प्रत्येक मनुष्य के मन में होने वाले अध्यवसायों को जानने की शक्ति प्राप्त होती है। जिन-जिन बातों का ज्ञान द्वारा संयम किया जाता है उन-उन बातों का अच्छी तरह आत्मा को ज्ञान होता है। आत्मा, छद्मस्थावस्था में विचार करने के लिए समय-समय पर अनंत मनोद्रव्य को ग्रहण करता है। अनेक प्रकार के विचार करने के लिए मनोद्रव्य की सहायता

लेनी पड़ती है। अच्छा विचार करने में शुद्ध मनोद्रव्य की सहायता ली जाती है तो शुभलेश्या का उत्पाद होता है। जिन-जिन वस्तुओं के सम्बन्ध में विचार किया जाता है, उन-उन वस्तुओं का क्षयोपशमज्ञान प्रकट होता है। दुनिया के पदार्थों के सम्बन्ध में विचार करने से, उन-उन वस्तुओं के ज्ञान के क्षयोपशम की वृद्धि होती है। जिसका क्षयोपशमज्ञान द्वारा सर्व प्रकार का क्षयोपशम प्रकट हो ऐसे आत्मतत्त्व का मनोद्रव्य की सहायता से विचार करना चाहिए। मनोद्रव्य की सहायता से आत्मतत्त्वों का बार-बार विचार किया जावे तो आत्मतत्त्ववासना में दृढ़ता आती है। अवग्रह, ईहा, अपाय और धारणा ये चार भेद वस्तुतः मतिज्ञान के हैं। अवग्रहादि चार भेदों के द्वारा आत्मतत्त्व का परोक्ष दशा में चिन्तवन करने से और आत्मतत्त्व सम्बन्धी घंटों तक संयम होने से, आत्मतत्त्व का विशेषतः अनुभव होता है। नियम यह है कि जिस पदार्थ का बारंबार चिंतन किया जाता है उस पदार्थ के ज्ञान के क्षयोपशम की वृद्धि होने से उस पदार्थ का अच्छी तरह ज्ञान किया जा सकता है। इस नियम के अनुसार आत्मतत्त्व का घंटों तक- आगमों के अनुसार मनन किया जावे तो आत्मा के स्वरूप का स्पर्श किया जा सकता है। प्रख्यात शोधक एडीसन ने अड़तालीस घंटों तक फोनोग्राफ के विचारों की श्रेणियों से फोनोग्राफ की शोधकर शब्दों के संचय को सिद्ध कर बताया। एडीसन की तरह घंटों तक जो शास्त्रानुसार आत्मतत्त्व का मनन करते रहते हैं वे आत्म-तत्त्व के सम्बन्ध में इतने गहरे उतर जाते हैं कि, उनको जगत् के बाह्य जीवों की खबर नहीं पड़ती। फिर जो रात-दिन आत्मा का मनोद्रव्य से चिन्तवन करते हैं वे अन्त में सत्य

कर्तव्य प्राप्त करते हैं। जिन्हें सिद्धांतों के अनुसार आत्मतत्त्व समझ में आता है वे, परमसुख के महासागर का अपने में निश्चय कर उसी में मनन, स्मरण द्वारा विचरण करते हैं। दुनिया में अनेक प्रकार के तत्त्वों का ज्ञान करते हुए जो आनंद नहीं मिलता वह आनन्द अपने स्वरूप का मनन करने से मिलता है। एक पूर्वाचार्य ने लिखा है कि, "सब प्रकार के ज्ञानियों को बोधित करने की ज्ञानशक्ति और सत्य सुख जानने की शक्ति वास्तव में आत्मा में ही है" तब आत्मा का ही अवलंबन लेकर यदि उसी का ज्ञान किया जावे तो कितना आनन्द मिलेगा? और उसका वर्णन कौन कर सकेगा?

आत्मतत्त्व के जानकार आत्मज्ञानी बहुत गहरे उतरकर उसके सहजसुख के स्वाद का अनुभव करते हैं, जिससे सिर पर दुःख का आकाश भी आ पड़े तब भी वे आत्मतत्त्व का आश्रय कभी नहीं छोड़ते। अध्यात्मज्ञान का तिरस्कार करने के लिए एकान्त जड़वादियों ने कुछ भी बाकी नहीं रखा है। जड़वादियों ने अध्यात्मज्ञानियों को दुःख देने में प्राणों का भी नाश किया है, तथापि अध्यात्मज्ञानियों ने बाह्य प्राणों का त्याग करने में—अपना सहजसुख अनुभव करने के बाद कमी नहीं की है। आत्मा के सहजसुख का जिन ज्ञानियों ने स्वाद चखा है वे चक्रवर्ती व देवताओं को भी कुछ नहीं गिनते। उन्हें तो आत्मतत्त्व की धुन लगी होती है, इसलिए उन्हें बाह्य पदार्थों पर आसक्तिभाव नहीं रहता है। अध्यात्मज्ञानी सब आत्माओं को अपनी आत्मा के समान मानकर उनसे शुद्ध प्रेम करते हैं। उनके हृदय में तृष्णा, स्वार्थ और वैषयिक सुख की इच्छा नहीं रहती है। आत्मतत्त्व का अनुभव होने के बाद मोह का जोर घटने लगता है। अध्यात्मज्ञानी जगत् के जीवों

को अपनी आत्मा के समान मानते हैं इसलिए उनका नाश न हो इसके लिए दयाव्रत को स्वीकार करते हैं। उनके मन में किसी जीव को दुःख न हो ऐसा विचार होता है, इसलिए वे सत्यव्रत को स्वीकार करते हैं। अध्यात्मज्ञानी भाव से पर वस्तु की इच्छामात्र का त्याग करने का प्रयत्न करते हैं और द्रव्य से पर पुद्गल वस्तु को ग्रहण करने का प्रयत्न नहीं करते। अधिकारभेद से वे अस्तेयव्रत को स्वीकार करते हैं। अध्यात्मज्ञानी को परवस्तु को भोगने की इच्छा नहीं रहती। परवस्तु की ऋद्धि को वे नाक के मैल समान समझते हैं, इसलिए वे परवस्तु सम्बन्धी इच्छाओं को रोकने तथा पंचेंद्रिय विषयों की इच्छाओं पर काबू पाने के लिए समर्थ होते हैं। इच्छा के त्यागरूप आंतरिक ब्रह्मचर्य का पालन करने में वे हकीकत में समर्थ बनते हैं। बाह्य जड़ वस्तुओं को धन रूप में मानने की वृत्ति को वे स्वीकार नहीं करते। बाह्य धन में मूर्च्छा नहीं रहती है। वह सब अध्यात्मज्ञान का प्रताप समझना। चक्रवर्ती आदि की पदवियां और करोड़ों रुपयों का त्याग कर जो, आत्मतत्त्व की आराधना करते हैं उन्हें अध्यात्म-ज्ञान की महिमा का सम्यग् बोध होता है। जब नमि राजा ने दीक्षा अंगीकार की और समस्त वस्तुओं के ममत्व को दूर किया तब इन्द्र महाराज ने उनके त्याग की परीक्षा के लिए उनके संपूर्ण नगर को जलता हुआ दिखाया, अंतःपुर की रानियों को अग्नि भय से पुकार करती हुई दिखाई फिर भी नमिराज मुनिवर कहने लगे कि इसमें मेरा कुछ नहीं जलता है। वे इन्द्र के इन्द्रजाल से मोहित नहीं हुए, इसमें मुख्य अध्यात्मज्ञान ही कारणभूत था। स्कंध मुनि के पांच सौ शिष्यों को घाणी में पीलने लगे तब, प्रत्येक मुनि आत्मतत्त्व की भावना से

घाणी में पिलते हुए भी शरीर द्वारा होने वाले दुःख को भी सहन किया और आत्मा में ही उपयोग रख परम समताभाव रखा। घाणी में पिलते हुए कितना दुःख होता होगा? इसका जिसने अनुभव किया हो वही जान सकता है। शरीर के किसी अंग में चाकू लग जाता है तो कितना दुःख होता है? तव घाणी में पिलते समय अत्यन्त असह्य वेदना को सहन करने में सत्य आत्मज्ञान की कितनी समर्थता है, वह ज्ञानी पुरुष ही जान सकते हैं। स्कंधसूरि के शिष्यों की अध्यात्मज्ञान की वास्तव में परिपक्व दशा थी, इसलिए वे आत्मा से शरीर अलग समझते हुए उत्तम ध्यान कर सके। **अपने को ऐसे मुनियों के दृष्टांत लेकर वैसी दशा प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।** अध्यात्मज्ञान के अभ्यासियों का प्रथमावस्था का ज्ञान तो गुलाव के पुष्प के समान होता है। गुलाव का पुष्प जैसे सूर्य की गर्मी से कुम्हला जाता है, वैसे अध्यात्मज्ञान के अभ्यासियों का प्राथमिक ज्ञान भी अनेक प्रकार के उपसर्ग आते ही दूर हो जाते हैं। **अनेक प्रकार के दुःखों के सामने जो अध्यात्मज्ञान टिका रहता है और जो आत्मा के गुणों को रक्षा करने में समर्थ होता है, उसे ही परिपक्व अध्यात्मज्ञान समझना चाहिए।**

प्रथमावस्था का अध्यात्मज्ञान

प्रथमावस्था में उत्पन्न होने वाला अध्यात्मज्ञान सामान्य होने से उस ज्ञान द्वारा चाहिए जितनी शांति नहीं मिलती, फिर भी उस ज्ञान के वल से पक्व ऐसे अध्यात्मज्ञान में प्रवेश किया जा सकता है। अनेक प्रकार के हेतुओं से प्रथम अवस्था में होने वाला अध्यात्मज्ञान पीछा टल जाता है, इसलिए ऐसे ज्ञानी यदि आचार और विचार से वलवान न हों तो उनमें

आत्मा का उद्धार करने के लिए निरुपाधि दशा भोगते हैं और आत्मतत्त्व की विचारणा में लीन रहते हैं, वे सद्गुरु हो सकते हैं। जिन मुनिवर-सद्गुरु ने अध्यात्मज्ञान का गहरा अनुभव किया है और जिनका अनुभव वास्तव में वीतराग वाणी के अनुसार है, ऐसे अध्यात्मज्ञानी मुनिवर की आज्ञा स्वीकार कर और उनके दास-शिष्य होकर अध्यात्मज्ञान का अनुभव करना चाहिए; यह बात मुख्यतः ध्यान में रखना चाहिए।

अध्यात्मज्ञान का अनुभव वास्तव में पाताली कुए जैसा है। पाताली कुए का पानी जैसे खतम नहीं होता, वैसे अध्यात्म का अनुभव भी नया नया प्रकट होने से कभी समाप्त नहीं होता। अध्यात्मज्ञान के बल से प्रतिदिन आत्मतत्त्व सम्बंधी नया अनुभव प्रकट होता है और इसलिए प्रत्येक बातों का सार संक्षेप में समझ में आता है। कितने ही सम्यग् अनुभव के बिना 'लेभागु' अध्यात्मी होते हैं उनकी अमुक बाबत में दृष्टि मर्यादावाली हो जाने से वे अपने विचारों में मानों सब प्रकार का अध्यात्मज्ञान समा गया है ऐसा घमंड करके अनेक प्रकार के वितंडावाद चाहे किसी के साथ कर, मन में आनंद के बजाय क्लेश को पाते हैं। कितने ही सम्यग्ज्ञान के अभाव में अमुक तरह की क्रिया करें तब ही अध्यात्म कहा जाय ऐसे उल्टे विचारों से बोलते हैं। अपनी बुद्धि द्वारा जो पूरा अनुभव किए बिना अध्यात्मज्ञान पर विचार करने लगते हैं वे बहुत भूल करते हैं, परन्तु वे बाद में अध्यात्मज्ञान का अनुभव प्राप्त कर अपनी भूल के लिए पश्चात्ताप करते हैं। गजसुकुमाल मुनिवर जो कि कृष्ण के भाई थे, उन्होंने बाल्यावस्था में दीक्षा ली थी। वे श्मशान में कायोत्सर्ग कर

खड़े थे। तव, उनके श्वसुर सोमिल ने क्रोधित हो उनके मस्तक पर मिट्टी की पाल वांध कर उसमें अंगारे भर दिये, फिर भी श्री गजसुकुमाल ने अध्यात्मज्ञान के वल से अग्नि के दुःख को सहन किया और अपने मन में जरा भी क्रोध नहीं आने दिया। अपने मन में वे अध्यात्मज्ञान के कारण उत्तम भावना भाने लगे और शरीर त्याग कर परम सुखी हुए। श्री गजसुकुमाल का दृष्टांत वास्तव में अध्यात्म भावना की पुष्टि में हेतुभूत है।

माता और पिता के समान अध्यात्मज्ञान

अध्यात्मज्ञान वास्तव में माता के समान है। माता जैसे अपने वाल वच्चों का लालन पालन करती है और उनको अनेक दुःखों से वचाती है; अपने वच्चों के अपराव की तरफ देखती नहीं परन्तु उनके भले के लिए ही हमेशा प्रयत्न करती है, वैसे अध्यात्मज्ञान भी भव्य जीवों की पुष्टि करता है और भव्य जीवों में रहे अनेक दोपरूप मल को दूर करता है; तथा भव्य जीवों के गुणों की पुष्टि कर परमात्मपदरूप महत्ता को देता है। अध्यात्मज्ञान वास्तव में माता पिता की जरूरत पूरी करता है। सांसारिक पिता, जैसे अपने कुटुम्व का पोपण करता है और कुटुम्व को सुखी करने के लिए कठिन परिश्रम करता है, शत्रुओं से अपने कुटुम्व की रक्षा करता है, अपने पुत्र और पुत्रियों को पढ़ाता है और उनको शुभ मार्ग की ओर ले जाता है, वैसे अध्यात्मज्ञानरूप भाव पिता भी विरति आदि कुटुम्व का पोपण करता है और अंतरात्मा को ज्ञानादि पंचाचार का शिक्षण देकर उनकी पुष्टि करता है, तथा मैत्री आदि भावनाओं के अमृतरस से अंतरात्मा का पोपण करता है और उच्च गुणस्थानकरूप शुभ मार्ग में अपने कुटुम्व को ले

जाता है और अपने कर्तव्य का पालन कर आत्मा के आंतरिक कुटुम्ब की उन्नति करता है। अध्यात्मज्ञान वास्तव में एक उत्तम मित्र के समान है। उत्तम मित्र जैसे अपने मित्र को प्रफुल्लित करता है वैसे अध्यात्मज्ञान भी अंतरात्मा को प्रफुल्लित करता है। उत्तम मित्र जैसे अपने मित्र का, संकट में साथ देता है, वैसे अध्यात्मज्ञान भी अंतरात्मारूप मित्र को मोहराजा द्वारा दिए अनेक प्रकार के संकटों में साथ देकर, मोह के दुःख से उबारता है! उत्तम मित्र जैसे अपने मित्र के साथ मृत्यु पर्यन्त विश्वासघात नहीं करता वैसे अध्यात्मज्ञान भी अंतरात्मा के साथ कदापि विश्वासघात करने की प्रवृत्ति नहीं करता। उत्तम मित्र जैसे अपने मित्र की दोष दृष्टि को टालकर सद्गुण दृष्टि रखता है, वैसे अध्यात्मज्ञान भी अंतरात्मा में रहे दोषों को टालकर सद्गुण दृष्टि विकसित करता है। अंतरात्मा का अपना क्या कर्तव्य है और वह किस तरह सिद्ध हो? यह सिखाने वाला अध्यात्मज्ञान है। उत्तम मित्र जैसे अपने मित्र के गुण व दोष जानता है फिर भी वह दोषों की बात किसी से नहीं करता और गुणों की बात सब जगह करता है। वैसे अध्यात्मज्ञान भी सर्व जीवों के लिए उत्तम मित्र की तरह है। जिनमें अध्यात्मज्ञान उत्पन्न होता है वे सर्व जीवों के गुणों को देखते हैं और सब जीवों के गुणों की सुगंधी फैलाते हैं। मनुष्यों के दुर्गुणों की तरफ उनका लक्ष्य नहीं जाता। दुर्गुणों का वे प्रसार नहीं करते, तथा दोषों को प्रकट कर किसी की आत्मा को दुःख नहीं पहुंचाते। अध्यात्मज्ञान से सर्व जीव अपने समान लगते हैं और इसलिए सब जीवों पर मैत्रीभावना प्रकट होती है। सब जीवों के गुण देखने की शक्ति मिलने से सब जीवों के जो जो गुण होते हैं

इन उन गुणों को देखकर अध्यात्मज्ञानी प्रमोदभाव को धारण करता है : तथा सब जीवों को दुःखी देख उन पर कारुण्य भावना धारण करता है और गुणहीनों को देखकर मध्यस्थ रहता है। उत्तम मित्र जैसे अपने मित्र की उन्नति करने में मेरा-तेरा ऐसा भाव नहीं रखना, उसी तरह अध्यात्मज्ञानी भी सब जीवों को मित्र मानकर उनका भला करने में मेरा-तेरा भाव धारण नहीं करता। सब जीवों को अपना मित्र समझने की शक्ति देनेवाला वास्तव में अध्यात्मज्ञान है। अध्यात्मज्ञान की दृष्टि से सम्पूर्ण जगत् एक कुटुम्ब समान लगता है :—
भगवद्गीता के विवेचन में कहा है कि—

अयं निज. परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचारितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।

यह मेरा है और यह तेरा है। ऐसी लघुमन वालों की भावना है; जिनका उदार चरित है उन्हें तो सम्पूर्ण पृथ्वी अपने कुटुम्ब समान लगती है। अध्यात्मज्ञान से ऐसी उत्तम भावना आने से जगत् में उदारचरित वाले मनुष्य उत्पन्न होते हैं और इसलिए वे दुनिया का भला किसी भी स्थिति में रहने पर भी करते हैं। उत्तम मित्र जैसे अपने मित्र से एकरूप होकर उसके दोष टालता है; वैसे अध्यात्मज्ञान भी आत्मा से एकरूप होकर आत्मा में रहे दोष टालने के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग करता है। उत्तम मित्र जिस तरह अपने मित्र का संकट के समय में साथ नहीं छोड़ता उसी तरह अध्यात्मज्ञान भी आत्मा को दुःख के समय नहीं छोड़ता है; परन्तु उलटा अध्यात्मज्ञान वास्तव में संकट के समय आत्मा को सहारा देने के लिए समर्थ होता है। अन्तर में उत्पन्न होने वाले मोह

रोगादि योद्धाओं के सामने खड़ा रहकर युद्ध करने वाला 'अध्यात्मज्ञान' जिसके हृदय में प्रकट हुआ है उसे अन्य मित्र बनाने की जरूरत नहीं होती। भय, खेद आदि अशुभ विचार आत्मा में उत्पन्न होते ही उन्हें हटाने वाला अध्यात्मज्ञान है। जो मनुष्य अध्यात्मज्ञान पर विश्वास रखकर उसे अपने मित्र की तरह स्वीकार करता है, उसे शोक, चिंता, भय आदि दुश्मनों का जरा भी भय नहीं रहता है।

अध्यात्मज्ञान को जो मित्र बनाना चाहते हैं वे आंतरिक सृष्टि में प्रवेश करते हैं, परन्तु उन्हें समझना चाहिए कि अध्यात्मज्ञान को मित्र बनाने के लिए प्रथम बाह्य वस्तुओं के ममत्व का त्याग करना होगा। जिन्हें अध्यात्ममित्र पर शुद्ध प्रेम नहीं होता उनके हृदय में अध्यात्मज्ञान की स्थिरता नहीं होती। जिन्हें महाराजा-शहनशाह को अपने घर पर बुलाना होता है उस घर को कैसा सजाना पड़ता है और अपने प्रेम का कितना विश्वास दिलाना पड़ता है? उसी तरह अध्यात्मज्ञान को हृदय में स्थिर करने के लिए, मन में अत्यन्त शुद्ध प्रेम और श्रद्धा रखनी होती है। शुष्क अध्यात्मियों के हृदय में सच्चा अध्यात्मज्ञान प्रकट नहीं होता, सिर्फ अध्यात्मज्ञान की बातों से आत्मा उन्नति नहीं होती। वस्तुतः अध्यात्मज्ञान जब हृदय में परिणमता है तब वैसा परिणामिक अध्यात्मज्ञान वास्तव में आत्मा की शुद्धता प्रकटाने में समर्थ होता है। अध्यात्मज्ञान सच्चे मार्ग में गुरु की गरज पूरी करता है। गुरु जैसे शिष्य को अनेक शिक्षाएं देकर ठिकाने लाता है और शिष्य को गुणवान बनाता है, वैसे अध्यात्मज्ञान भी आत्मा को अनेक प्रकार की शिक्षा देकर आत्मा को स्व-स्वभावरूप

अपने घर में लाता है और क्षयोपशमादि भावना आदि अनेक गुणों का धाम आत्मा को बनाकर, अनंत महजसुख का विलासी बनाता है। गुरु जैसे शिष्य की भलाई के लिए हमेशा प्रयत्न करता रहता है, वैसे अध्यात्मज्ञान भी अन्तरात्मा की उन्नति के लिए प्रयत्न करता रहता है; जैसे गुरु शिष्य को अपने उपदेश से अनेक शिक्षाएं देकर विनयवान बनाता है, वैसे अध्यात्मज्ञान भी जगत् के जीवों को अनेक शिक्षा देकर अहंकार दोष को हटाकर विनयवंत बनाता है। अध्यात्मज्ञान और अहंकार का सुमेल होता नहीं। मुनिवर अध्यात्मज्ञान द्वारा अहंकार को जीतकर लघुता गुण को धारण कर विनय का पाठ सम्पूर्ण जगत् को पढ़ाते हैं। अध्यात्मज्ञान से लघुता गुण की यदि प्राप्ति न हो तो समझना कि, उसके हृदय में अध्यात्मज्ञान ने प्रवेश किया ही नहीं है। अध्यात्मज्ञान वस्तुतः सूर्य के समान है। आत्मसृष्टि में रही ऋद्धि का दर्शन कराने वाला अध्यात्मज्ञान है। अध्यात्मज्ञान रूप सूर्य के प्रकाश से अंतरात्मारूप कमल खिलता है और वह भोगरूपी जल से, निर्लेप रहता है।

उपमा, उपमेय, अध्यात्मज्ञान

अध्यात्मज्ञानरूप सूर्य की किरणों से अज्ञानरूप अंधकार का नाश होता है। अध्यात्मज्ञान रूप सूर्य के प्रकाश से मनुष्य सब वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अध्यात्मज्ञानरूपी सूर्य के सामने दुनिया के पदार्थों का ज्ञान चमकते ताराओं के समान शोभा देता है। अध्यात्मज्ञानरूप सूर्य के प्रकाश से आत्मा के समस्त गुणों के दर्शन होते हैं।

अध्यात्मज्ञान वास्तव में जगत् में चंद्रमा की उपमा के समान है। अध्यात्मज्ञानरूप चंद्रमा की शीतलता से मनुष्य आंतरिक शांति प्राप्त करने में शक्तिमान होता है। अध्यात्मज्ञानरूप चंद्रमा से अनुभवरूप अमृत झरता है, उसका उत्तम योगी पान करते हैं। अध्यात्मज्ञानरूप चंद्र के पूर्ण उदय से समतारूप सागर की वेल बढ़ती है और उससे जगत् में आनन्द महोत्सव होते हैं। आध्यात्मिकज्ञान रूप चन्द्रमा का प्रकाश जगत् में फैलने से अपूर्व शांति का वायु चलता है। अध्यात्मज्ञान वास्तव में सागर की उपमा धारण करता है। सागर जैसे अनेक नदियों से शोभित होता है वैसे अध्यात्मज्ञान भी अनेक शुभ अध्यवसायों रूप नदियों से शोभित होता है। सागर की गंभीरता जैसे जगत् में प्रसिद्ध है वैसे अध्यात्मज्ञान की गंभीरता जगत् में विख्यात है। सागर के किनारे पर मनुष्य जैसे व्यापार करके लक्षाधिपति बनता है, वैसे अध्यात्मज्ञानरूप सागर के किनारे से महात्मा ज्ञान, दर्शन और चारित्र का व्यापार कर परमात्मपदरूप लक्ष्मी के स्वामी बनते हैं। समुद्र में अन्य लोग विष्णु और लक्ष्मी का वास मानते हैं, वैसे अध्यात्मसागर में परमात्मरूप विष्णु और केवलज्ञानरूप लक्ष्मी का वास है। सागर को मंथन करने से जैसे चौदह रत्न निकलते हैं, वैसे अध्यात्मज्ञानरूप सागर का मंथन करने से आंतरिक गुणरूप चौदह रत्न निकलते हैं। सागर का दर्शन जैसे शुभ माना जाता है, वैसे अध्यात्मज्ञान-रूप सागर का दर्शन भी मंगल रूप माना जाता है। सागर जैसे भरती से कूड़े को बाहर निकाल देता है, वैसे अध्यात्मज्ञानरूप सागर भी कर्मरूपी कूड़े को अपने से दूर कर देता है। अध्यात्मज्ञानरूप सागर में महात्मा हमेशा डूबे रहते हैं। अध्यात्मज्ञानरूप सागर में अनेक रत्न हैं। अध्यात्मज्ञान को

पृथ्वी की उपमा दी जाती है; पृथ्वी जैसे अपने पर गिरते खराब अशुभ पदार्थों को सहन करती है वैसे अध्यात्मज्ञान भी सब प्रकार के परिषह सहन करने को शक्तिमान होता है। पृथ्वी पर जैसे अनेक वनस्पतियां ऊगती है वैसे आत्मा में भी अनेक सद्‌गुण प्रकट होते हैं। समस्त मनुष्यों का आधार पृथ्वी है वैसे समस्त गुणों का आधार वास्तव में अध्यात्मज्ञान है। अध्यात्मज्ञान को मेरु पर्वत की उपमा दी जा सकती है। मेरु पर्वत का धैर्य भी अध्यात्मज्ञान के आगे कुछ भी नहीं है। अध्यात्मज्ञान से मनुष्यों में धैर्य शक्ति की उत्पत्ति होती है और उससे बड़े-बड़े धर्म कार्य करने की शक्ति प्राप्त होती है। अध्यात्मज्ञान से आत्मशक्ति पर विश्वास होता है और उसके कारण धर्म कार्यों में जो-जो विघ्न आते हैं उन्हें हटाया जा सकता है, और इससे अपने निश्चय से पीछा नहीं हटा जाता। हाथ में लिए कार्य को कायर मनुष्य छोड़ देते हैं और उत्तम अध्यात्मज्ञानी मनुष्य तो, मरते दम तक हाथ में लिए काम को छोड़ते नहीं। अपनी शक्ति में विश्वास कराने वाला अध्यात्मज्ञान है। मेरु पर्वत जैसे अपने स्थान का त्याग नहीं करता वैसे अध्यात्मज्ञान भी आत्मा को छोड़कर दूसरी जगह नहीं जाता। कल्पवृक्ष की तरह अध्यात्मज्ञान वास्तव में मनुष्यों को इच्छित फल देता है। कल्पवृक्ष से भी अध्यात्मज्ञान की महत्ता कुछ अलग ही तरह की है। अध्यात्मज्ञान से नित्य-सुख की प्राप्ति होती है, ऐसा लोकोत्तर पद कल्पवृक्ष कभी भी देने में शक्तिशाली नहीं है। बाहर के बाग से भी अंतर के अध्यात्मज्ञानरूप बाग की शोभा उत्तम और अलग तरह की है। बाह्य बाग में जैसे अनेक प्रकार की वेलें सुशोभित होती हैं और उनमें प्रवेश करने वाले को शीतलता और सुगंध का लाभ

मिलता है, वैसे अध्यात्मज्ञानरूप बाग में समता की शीतलता और ध्यान की सुगन्ध महकती है, अध्यात्म बाग में प्रवेश करने वाले को उसका लाभ मिले बिना नहीं रहता। अध्यात्मज्ञान वास्तव में मेघ की तरह भव्य मनुष्यों का आधार है। मेघ से सम्पूर्ण दुनिया जीवित है। मेघ से जैसे पृथ्वी पर सर्वत्र बीज उग आते हैं और उससे पृथ्वी पर हरियाली दिखाई देती है, उसी तरह अध्यात्मज्ञानरूप मेघ से अन्तरात्मारूप पृथ्वी में अनेक सद्गुणों के बीज उगते हैं और उससे अन्तरात्मा में सर्वत्र गुणों की शोभा व्याप्त हो जाती है। भव्य जीवों में सर्व प्रकार के गुणों को प्रकटाने वाला वास्तव में अध्यात्मज्ञान है। जैसे मेघ के बिना दुष्काल पड़ता है और जहां-तहां महामारी फैलती है जिससे जगत् में मरण, खेद, शोक और अशांति का जोर बढ़ता मालूम होता है उसी तरह अध्यात्मज्ञानरूप मेघ की भव्य जीवों पर वृष्टि हुए बिना समत्वभावरूप दुष्काल और राग-द्वेष-ईर्ष्या, निंदा-क्लेश आदि चोरों का जोर बढ़ता है। दया आदि भोज्य पदार्थों के बिना दुनिया को शांति नहीं मिल सकती और उनके बिना बाह्य और अंतर इन दोनों दिशा में भी जगत् में अशांति फैलती है। अध्यात्मज्ञानरूप मेघ की सब भव्य जीव इच्छा करते हैं। जो अशांति में आनन्द की इच्छा करते हैं वे अध्यात्मज्ञानरूप मेघ की इच्छा नहीं करते। अध्यात्मज्ञानरूप मेघ की वृष्टि वास्तव में पुष्करावर्त मेघ की वृष्टि से भी अनंतगुणी उत्तम है। अध्यात्मज्ञान को नदी की उपमा दी जाती है। अध्यात्मज्ञानरूप नदी में मनुष्य स्नान करते हैं और असंख्य प्रदेशों में शरीर निर्मल होता है। अध्यात्मज्ञानरूप नदी का प्रवाह जगत् में बहता रहता है और वह भव्य जीवों की सहायता करता है। नदी से जैसे खेतों को पानी मिलता है और

खेती अच्छी पकती है, वैसे अध्यात्मज्ञानरूप नदी के शुभ अध्यवसायरूप जल से अनेक मनुष्यों के हृदयक्षेत्र पोषित होते हैं और उससे मनुष्यों के हृदय क्षेत्र में धर्म की खेती पकती है। बावनाचंदन के रस का छींटा देने से, गरम हुआ तेल भी ठंडा हो जाता है; उसी तरह मनुष्यों की हृदयरूप कढ़ाई में आत्मा की परिणति वास्तव में क्रोधरूपी अग्नि से लालचोल हो जाती है, परन्तु अध्यात्मज्ञान भावनारूप बावनाचंदन के रस के छींटे दिये जाते हैं तो आत्मा में अत्यंत शांति उत्पन्न होती है। अध्यात्मज्ञानरूप बावनाचंदन को प्राप्त कर कुरगडू ने क्रोध को जीत केवलज्ञान प्राप्त किया था, चंडरुद्राचार्य के शिष्य ने अध्यात्मज्ञानरूप बावनाचंदन के रस से अपने हृदय में शांति धारण कर केवलज्ञान प्राप्त किया था।

अध्यात्मामृत रस

अध्यात्मज्ञानरूप अमृतरस से मनुष्य अपनी आत्मा को नया जीवन देते हैं और अपनी आत्मा को हमेशा के लिए सुखी बनाते हैं। अध्यात्मज्ञानरूप अमृतरस का पान जो नहीं करते वे विषयरूप जहर का पान करते हैं और अपने जीवन को दुखी बनाकर परभव में भी दुःख के भोक्ता बनते हैं। पंचेंद्रिय विषय सुख तो वास्तव में जहर के समान है, उसमें हमेशा रत रहने से अनंतकाल तक दुःख के भागी होना पड़ता है। पंचेंद्रिय विषय सुख भोगने में अनेक जीव हमेशा प्रयत्न करते रहते हैं, उससे मुक्त कराने वाला अमृतरस से अधिक अध्यात्मरस है। आत्म-सुख की प्रतीति कराकर आत्मा में विचरण कराने वाला उत्तम से उत्तम अध्यात्मरस है। वृक्ष में बहता रस जैसे सम्पूर्ण वृक्ष का पोषण करता है वैसे, अध्यात्मरस भी आत्मा के सम्पूर्ण गुणों

का पोपण करता है और आत्मा की शुद्धि कर उसे परमात्मा-रूप बनाता है। आत्मा के गुणों के बाग का सींचने वाला और उसे विकसित करने वाला अध्यात्मजल है। अध्यात्मरस में डुबकी लगाकर अनुभवरूप मात्रा का सेवन करने वाले मनुष्य, अपनी आत्मा को पुष्ट कर नया चैतन्य प्रकट करते हैं। वृक्ष की अनेक शाखाओं और प्रशाखाओं का आकार भिन्न २ होता है, किन्तु उन शाखाओं और प्रशाखाओं में बहनेवाला रस तो एक समान ही होता है; उसी तरह भिन्न भिन्न गच्छ, मत, आचार और धर्म की भिन्न भिन्न शाखाओं और प्रशाखाओं को पोपण करनेवाला अध्यात्मरस तो एक ही है। मनुष्यों के मस्तक पर धूप आ रही हो, गरम लू चारों तरफ चल रही हो, प्यास से गला सूख गया हो, प्यास से जीव व्याकुल हो रहा हो, आंखें बैठ गई हों, पैरों के चलने की शक्ति मंद हो गई हो, इतने में शीतल जल का कुँआ मिल जाय तो सब तरह की पीड़ा दूर हो जाती है और शीतल जल से प्यास दूर हो जाती है; उसी तरह मनुष्यों को चारों तरफ से अनेक प्रकार की उपाधियों का ताप लगता हो, प्यास के मारे अनेक प्रकार के दुःख का अनुभव होता हो, आत्मबल मंद हो, ऐसे समय अध्यात्मरस का अमृत का घड़ा मिले तो वास्तव में सब प्रकार के दुःख दूर हुए बिना नहीं रहते। अध्यात्मरस में इस तरह की शक्ति है कि हजम होने के बाद आत्मा में नया चैतन्य प्रकटाकर आत्मा में आनंद का आविर्भाव करता है। जो मनुष्य अध्यात्मरस का पान करते हैं उन्हें अन्य रसों का स्वाद अच्छा नहीं लगता और उनके मन में अध्यात्मरस चखने की भावना पैदा होती रहती है। एक बार जिसने अमृतरस पिया हो उसे रूखा सूखा भोजन अच्छा नहीं लगता, उसी तरह एक बार अध्यात्मरस का पान

करने से बाद दूसरे रसों पर रुचि नहीं होती है। इसे ही अध्यात्मरस की महत्ता समझना। अध्यात्मरस का सिरछत्र जिसके मस्तक पर हमेशा हो उसे ही आनंदरस का भोगी और त्रिभुवन में एक सत्ताधारी जानना। जो अध्यात्मज्ञान की सत्ता से पांचों इंद्रियों पर हुकम चलाते हैं उन्हें सच्चे राज्यकर्ता जानना। अध्यात्मज्ञानरूप सूर्य की किरणों से जिसके हृदय में प्रकाश होता है वे मनुष्य दुर्गुणों को जीतने में समर्थ होते हैं। एक कवि ने कहा कि "स्थूल साम्राज्य की अपेक्षा सूक्ष्म अध्यात्म-साम्राज्य की लीला अलग ही प्रकार की है।" अध्यात्मज्ञान की सृष्टि की सुन्दरता को देखे बिना मनुष्य की जिन्दगी व्यर्थ है। एक कवि ने कहा है कि — "तुम अध्यात्म में गहरे उतरो, तुम्हारे मन की शंकाएं अपने आप नष्ट हो जायंगी।" एक कवि ने कहा है कि — "अध्यात्मा में ऐसा जुस्सा बहता है कि उस जुस्से में चढ़ा आत्मा सम्पूर्ण जगत् की शहनशाही के स्वयं ऊपर होकर अपूर्व आनन्दरस की मस्ती में डूबा रहता है।" एक महात्मा कहते हैं कि — "मोक्षमार्ग की सच्ची सीढ़ी अध्यात्मज्ञान है।" अध्यात्मज्ञान का मार्ग प्राप्त होना यह कोई साधारण बात नहीं है। अध्यात्मज्ञान के मार्ग पर टिके रहना तथा अध्यात्मज्ञान का स्वाद लेना यह कोई सामान्य बात नहीं है। सपूर्ण जगत् में सूर्य की तरह सबको प्रकाश देने की इच्छा होती हो तो, अध्यात्मज्ञान के मार्ग पर आओ। अध्यात्मज्ञान वास्तव में तुम्हारे हृदय में रहे हुए अनेक दोषों को दूर करने में वैद्य की गरज पूरी करेगा।

अध्यात्मरस के रसिक मनुष्यों को अपने अधिकार का पुनः पुनः निरीक्षण करना चाहिए और अधिकार के लिए योग्य अनुष्ठान करने में कमी नहीं रखना चाहिए। मनुष्य के

हृदय को स्वच्छ बनाने वाला अध्यात्मरस है। चारों तरफ आग लगी हो और बीच में कोई खड़ा होकर शीतलता का अनुभव करता हो ! तो वह अध्यात्मज्ञानी है। मनरूपी बंदर को वश में रखने के लिए शास्त्रों में अनेक प्रकार के उपाय बताये हैं, परन्तु उन सब में अध्यात्मज्ञान के बराबर कोई दूसरा उपाय नहीं है। अध्यात्मज्ञानरूप भंग को पीकर जो मस्त बनते हैं वे जगत् में किसी की इच्छा नहीं करते। अध्यात्म भंग पीने वाले (बाल दृष्टि की उपेक्षा से उलटी आंख से देखने वाले अध्यात्मज्ञानी) परमात्मा का दर्शन कर अखण्डानंद में मस्त रहते हैं। जहां अंतर से आत्मधर्म की उपयोग धारा बहती हो, वहां आनंद का क्या पूछना ? विवेकी मनुष्य अंत में आनंदमय अध्यात्मज्ञान को शोध कर तृप्त होता है। मनुष्यों की जैसे जैसे सूक्ष्म दृष्टि होती जाती है, वैसे वैसे वे आत्मतत्त्व के ज्ञान में बहुत गहरे उतरते जाते हैं और अंतर के परमानंद का आस्वाद लेते हैं। जिन मनुष्यों की उत्तरोत्तर अध्यात्मदृष्टि विकसित होती जाती है उनकी दृष्टि में, बहुत शुद्धता होने से वे मनुष्यों के सद्गुणों को देख सकते हैं और दोषों से दूर रहते हैं, तथा अनादिकाल से अंतर में परिणाम वाली ऐसी दोष दृष्टि को मूल से उखाड़ फेंकते हैं।

चार निपेक्षा से अध्यात्मज्ञान

किसी के मन में यह विचार आवे कि, "सारी दुनिया में सद्गुण फैलाना और दुर्गुणों का मूल से नाश करना"। ऐसे विचार वाले को सुझाव है कि, उसे उत्तम अध्यात्मज्ञान का जगत् में प्रकाश करना चाहिए। अध्यात्मज्ञान के अपेक्षा से चार भेद हैं। नाम अध्यात्म, स्थापना अध्यात्म, द्रव्य अध्यात्म, और भाव अध्यात्म। इन चारों निक्षेपा से अध्यात्म-

तत्त्व का ज्ञान करना चाहिए। नाम, स्थापना और द्रव्य में तीन निक्षेपा कारण हैं और भाव निक्षेपा कार्य है। नामादि तीन निक्षेपा से जो अध्यात्म कहा जाता है वह भावअध्यात्म के हेतु से परिणमता है। गुरू के तीन निक्षेपा व्यवहार में गिने जाते हैं और भाव अध्यात्म का निश्चय में समावेश होता है; अध्यात्म के ग्रंथ आदि का द्रव्य में समावेश होता है; क्योंकि अध्यात्म के ग्रंथ पढ़ने से भाव अध्यात्मरस की परिणति जागृत होती है। जिस जिस कार्य में जिस जिस कारण से परिणमते हैं वे द्रव्य गिने जाते हैं, और कारण द्वारा जिस जिस अंश से कार्य की प्रकटता होती है उस उस अंश से वह भाव गिना जाता है। जैन शास्त्रों में हरएक निक्षेपा की सापेक्षता से उपयोगिता बताई है। विशेषावश्यक में चार निक्षेपा की उपयोगिता सम्बंधी बहुत विवेचन किया गया है। हरएक निक्षेपा का स्वरूप गहरे उतर कर विचार करें तो उसमें से कुछ जानकारी मिले बिना नहीं रहती। प्रत्येक निक्षेपा की उपयोगिता समझना यह कोई सामान्य बात नहीं है। दुनिया में नाम, स्थापना और द्रव्य अध्यात्म की अपने अपने कार्य की अपेक्षा से अनन्तगुणी उपयोगिता है। नाम, स्थापना और द्रव्य निपेक्षा की उपयोगिता स्वीकार किये बिना छुटकारा नहीं। नैगमनय, और व्यवहार-नय, द्रव्य की उपयोगिता बताते हैं, द्रव्य को अस्वीकार किया जाय तो नैगम, संग्रह और व्यवहारनय का अपलाप हो इसलिए सापेक्ष दृष्टि से चारों निपेक्षा की उपयोगिता स्वीकार करने योग्य है; द्रव्यनिक्षेपा यदि भाव को प्रकटावे तो वह उपयोगी समझना। श्रीमद् आनंदघनजी भावअध्यात्म की उपयोगिता के सम्बंध में जोर देकर बताते हैं कि, "नाम अध्यात्म, ठवण अध्यात्म, द्रव्य अध्यात्म छंडो रे, भावअध्यात्म, निज गुण साधे,

तो तेहशुं रढ मंडो रे—नाम, स्थापना और द्रव्य ये तीन निपेक्षा भाव निक्षेपा की साध्य—शून्यता से त्याग करने लायक है। शुद्ध अध्यात्मज्ञानी द्रव्य निक्षेपा के कारण की अपेक्षा से उपासक हैं, परन्तु यदि वे सदाचार और सद्‌विचारों से आत्मा को उत्तम बनावें तो भाव अध्यात्म द्वार में प्रवेश करने वाले गिने जा सकते हैं। आत्मा के सद्‌गुणों को प्रकटाना यह भाव-अध्यात्म समझना। श्रीमद् आनंदघनजी भावअध्यात्म की अत्यंत उपयोगिता बताते हैं इसमें बहुत रहस्य समाया हुआ है। भावअध्यात्म की उपयोगिता सर्वथा मान्य है, उसे ही साध्य बिंदु मानकर जो जो अनुष्ठान करने के हैं उन्हें करना चाहिए। आत्मा के परिणाम की शुद्धि यही अध्यात्म है, ऐसा बताकर उन्होंने भाव अध्यात्म की तरफ मनुष्यों की वृत्ति करने के लिए, अपनी रुचि के अनुसार शास्त्र के आधार से प्रयत्न किया है।

भाव अध्यात्म में प्रवेश करने के लिए द्रव्यादि निक्षेपा की जरूरत है। अनेक भवों के अभ्यास से भावाध्यात्म तरफ गमन किया जा सकता है। अपने को अध्यात्म की तरफ गमन करने की इच्छा रखनी चाहिए; परन्तु उससे पहले एक उपयोगी सूचना यह लक्ष्य में रखना है कि, मेरा अधिकार उसके लिए है कि नहीं यह निर्णय करना, और अध्यात्ममार्ग की तरफ जाने जो जो सत्क्रियायें करने योग्य हों उनका आदर करना। घर बनाते समय पहले नींव मजबूत की जाती है वैसे अध्यात्म की तरफ जाने से पहले सदाचार की नींव मजबूत करना चाहिए। अध्यात्मज्ञान से मेरी आत्मा के गुण प्रकट होने वाले हैं ऐसा मन में दृढ़ निश्चय करना, और सत्कार्यों के व्यवहार से पीछे नहीं हटना, उसके लिए पूरा उपयोग रखना। अध्यात्म-

ज्ञानरूप अग्निबोट में बैठकर मोक्षनगर की तरफ प्रयाण करने की जरूरत है।

अध्यात्म की तरफ कौन जाता है ?

जो मनुष्य संसार में सत्य क्या है उसकी खोज करता है, वे अध्यात्म की तरफ आते हैं। जो मनुष्य अपनी आत्मा का सहज आनंद प्राप्त करने की इच्छा करते हैं वे अध्यात्म की तरफ जाते हैं। जो मनुष्य सांसारिक दुःखों का नाश करने की इच्छा करते हैं वे अध्यात्ममार्ग की तरफ जाते हैं। जो जीवन का मुख्य हेतु ढूंढते हैं वे अध्यात्म की तरफ जाते हैं। जिनकी तत्त्व बुद्धि हुई हो वे अध्यात्म की तरफ जाते हैं जिनकी साध्य लक्ष्य बुद्धि हुई हो वे अध्यात्ममार्ग की तरफ जाते हैं। जिनकी वैराग्य परिणति हुई हो, वे अध्यात्ममार्ग की तरफ जाते हैं। जिन्हें स्थूल जड़ पदार्थों में सुख नहीं मालूम पड़ता वे अध्यात्ममार्ग की तरफ जाते हैं। जिनके हृदय में अनुभव दशा प्रकट हुई है वे अध्यात्ममार्ग की तरफ जाते हैं। जिन्हें कर्म और आत्मा का भेदज्ञान द्वारा स्वरूप समझ में आया हो वे अध्यात्ममार्ग की तरफ जाते हैं। जो क्रोध, मान, माया और लोभ का नाश करने की इच्छा करते हैं वे अध्यात्ममार्ग की तरफ जाते हैं। जो जगत् में जीवों का भला करना चाहते हैं वे अध्यात्ममार्ग की तरफ जाते हैं। जो दया के तत्त्व की इच्छा करते हैं वे अध्यात्ममार्ग की तरफ जाते हैं। जो जगत् को निर्दोष बनाना चाहते हैं वे अध्यात्ममार्ग की तरफ जाते हैं। जो अपना सच्चा स्वरूप समझने का प्रयत्न करते हैं वे अध्यात्ममार्ग की तरफ जाते हैं। जो शांति चाहते हैं वे अध्यात्ममार्ग की तरफ गमन करते हैं। जो समानभाव प्राप्त करना चाहते हैं वे अध्यात्ममार्ग की तरफ जाते हैं। जो धर्म

के गुप्त तत्त्व जानने की इच्छा करते हैं वे अध्यात्ममार्ग की ओर जाते हैं। जो मोक्ष प्राप्ति की इच्छा करते हैं वे अध्यात्ममार्ग की तरफ जाते हैं। जो मनुष्य अध्यात्ममार्ग की तरफ जाते हैं वे अपनी आत्मा के समान दूसरों की आत्माओं को मानने वाले होने से, उनसे वस्तुतः किसी जीव का अशुभ नहीं हो सकता। जो मनुष्य अध्यात्ममार्ग की तरफ जाते हैं वे कर्मों को खपाते हैं और आत्मसृष्टि में प्रवेश करते हैं। 'भोंकना और आटा चाटना' ये दो काम जैसे कुत्ते से एक साथ नहीं हो सकते, वैसे राग-द्वेष को बढ़ाने और मुनिमार्ग के भाव-चारित्ररूप अध्यात्ममार्ग में स्थिर रहना ये दोनों काम एक साथ नहीं हो सकते, 'अध्यात्म और मोह' इन दोनों का मेल नहीं बैठता।

मेरा अच्छा हो, मेरी आत्मा में गुण प्रकटे ऐसी इच्छा वाले मनुष्यों को मन में होने वाली अशुभ वासनाओं का सामना करना चाहिए। मन में उत्पन्न होने वाले कषाय के परिणाम को जीतना चाहिए। मनुष्यों को धीरे धीरे मन को आत्मा की तरफ लगाना चाहिए। क्षण क्षण में मन में होने वाले परिणाम की तरफ उपयोग रखना चाहिए। कर्म के शुभाशुभ विपाक का स्वरूप समझने से सहज ही इस संसार की तरफ होने वाली मन की प्रवृत्ति घटती है। अज्ञानदशा में बाह्य दुनियादारी की हलचल में रस आता है, परन्तु बाद में आत्मदशा में आंतरिक गुणों की प्राप्ति के लिए रस आता है। आत्मा के गुण पर प्रेम करना शुरू किया यानी मनुष्यों को समझना कि, अब हमारी दशा बदली है, अर्थात् हमने आत्मा के मार्ग की ओर गमन किया है। जिस समय हमारे शुद्ध स्वरूप की तरफ जाया जाता है उस समय आत्मा की

परिणति में बहुत परिवर्तन हो जाता है। सूई में डोरा पिरोने के बाद सूई कचरे में गिर जाती है फिर भी वह मिल जाती है, उसी तरह अध्यात्मतत्त्व के स्वरूप का स्पर्श होने के बाद भी कभी कर्म का जोर बढ़ जाय फिर भी बाद में मोक्षमार्ग की तरफ जाया जा सकता है और अपने शुद्ध धर्म की आराधना की जा सकती है।

अध्यात्म बल

अध्यात्मज्ञान से प्राप्त होने वाले अध्यात्मबल की अद्भुत शक्ति है। व्यवहारवादियों के उपसर्गरूप अग्नि के बीच में रहने वाला अध्यात्मज्ञानरूप स्वर्ण अपने मूल रंग को कभी नहीं बदलता। चाहे जितने बादलों के आवरणों से आच्छादित हुआ सूर्य अपने मूल रूप को नहीं बदलता, वैसे अनेक उपाधियाँ आने पर भी अध्यात्मज्ञान अपना स्वरूप नहीं बदलता। अध्यात्मज्ञान बल की तुलना करने वाला जगत् में कोई दूसरा जड़ पदार्थ नहीं है। अध्यात्मज्ञान से अध्यात्मबल प्राप्त किया जा सकता है। अध्यात्मज्ञान में इतनी शक्ति है, कि, वह कर्म के हमले से आत्मा का संरक्षण करता है और आत्मा के गुणों का प्रकाश करने में समर्थ होता है। आत्मा को संवर में लाने वाला वास्तव में अध्यात्मज्ञान है। आत्मा को पांच समिति से युक्त करने वाला अध्यात्मज्ञान है। तीन गुप्ति के सामने आत्मा को करना हो तो अध्यात्मज्ञान की प्राप्ति करना चाहिए। इस जगत् में अहंकार दोष के आधीन बहुत से जीव हो जाते हैं। अहंकाररूप पर्वत का नाश करने के लिए वज्र के समान वास्तव में अध्यात्मज्ञान है। आत्मारूप आकाश में सूर्य की तरह प्रकाश करने वाला उत्तरोत्तर अध्यात्मज्ञान है। आत्मा में

अध्यात्म को धिक्कारे ! परन्तु जैसे सूर्य अरुचिवाले चिमगादड़ सूर्य के सामने नहीं देख सकते, इससे सूर्य की महिमा कम नहीं होती; वैसे अज्ञानी जीवों के शोरगुल मे अध्यात्मज्ञान की महिमा कम नहीं होती। सम्पूर्ण जगत् के धर्मों के मूल को देखें तो अध्यात्मज्ञान में ही समाविष्ट दिखाई देगा। जिस धर्म में अध्यात्मविद्या नहीं है उस धर्म की जड़ गहरी नहीं होती और इससे अध्यात्मविद्या के विना वाला धर्म किसी भी जोर के धक्के से मूल से नष्ट हो जाता है। शिक्षितों के आगे अध्यात्मज्ञान विना कोई धर्म परीक्षा में टिक नहीं सकता। अध्यात्मज्ञान बिना कोई धर्म विद्वानों के हृदय में गहरी असर नहीं कर सकता। दुनिया की समस्त वस्तुओं पर से ममता छुड़ाने वाला वस्तुत: अध्यात्मज्ञान है। जिन मनुष्यों की बुद्धि स्थूल है और जिनकी बुद्धि सूक्ष्म तत्त्वों में प्रवेश नहीं करती ऐसे मूर्ख मनुष्य, अध्यात्मज्ञान के अधिकारी नहीं हो सकते। पालियामेंट का प्रधान बनना जिस तरह कठिन है उसी तरह अध्यात्मज्ञान का अधिकारी बनने का कार्य भी मुश्किल है: आत्मा के सहज सुख का स्वाद लेना हो तो अध्यात्मज्ञान का अधिकारी बनना चाहिए। जो लोग अध्यात्मज्ञान से शून्य होते हैं उनके आचरण का पता लगाया जावे तो चार्वाक की तरह, ऐहिक सुखों के लिए उनकी समस्त प्रवृत्ति मालूम पड़ेगी। अध्यात्मज्ञानरूप सूर्य के सामने तारों की तरह अन्य ज्ञान भी मंद पड़ जाता है उस समय अन्य पदार्थों के ज्ञान की कोई गिनती नहीं होती। ऐसा उत्तम अध्यात्मज्ञान प्राप्त करना यह सद्गुरु की पूर्ण कृपा बिना सम्भव नहीं हो सकता। हिरण जैसे सिंह से डरता है वैसे बालजीव विषयों के वश में होने से हिरण जैसे बन जाते हैं और इसलिए वे अध्यात्मज्ञानरूप सिंह से डरते हैं। किसी

गहरा उतरने के लिए जगत् में यदि कोई साधन है तो वस्तुतः अध्यात्मज्ञान ही है। क्षमादि दस प्रकार के धर्म की उत्पत्ति करने के लिए अध्यात्मज्ञान समर्थ है। मृत्यु के समय आत्मा को अपने उपयोग में लाने वाला कोई उत्तम ज्ञान है तो वह वस्तुतः अध्यात्मज्ञान है। इस दुनियादारी के समस्त दुःखों को भूल जाने की कोई उत्तम दवा है तो वह अध्यात्मज्ञान है। शरीर को पुष्ट करने वाला जैसे दूध है वैसे आत्मा को पुष्ट करने वाला वास्तव में अध्यात्मज्ञान है। पानी के बिना जैसे किसी भी प्रकार का भोजन/नहीं बन सकता, वैसे अध्यात्मज्ञान बिना कोई भी धार्मिक प्रवृत्ति नहीं हो सकती। आत्मा को आत्मपन में अमर करने वाला, कोई रस है तो वह अध्यात्मरस है आत्मा को अलमस्त करने में उत्तम पाक है तो वह अध्यात्मपाक ही है। जो मनुष्य अध्यात्मज्ञान से हीन होते हैं वे आरोपों से आरोपित धर्म को सच्चे धर्म के रूप में स्वीकार करते हैं और अपनी आत्मा के मूल धर्म को भूल जाते हैं। जो मनुष्य अध्यात्मभाव से हीन होते हैं वे औदयिक भाव के कार्यों में धर्म बुद्धि रखते हैं। लकड़ी की पुतली को कोई पागल मनुष्य, असली स्त्री मान लेता है, वैसे अज्ञानी जीव वास्तव में अधर्म को भी धर्म के रूप में स्वीकार करते हैं आत्मा के गुणों से दूर रहते हैं। जैसे कोई स्त्री अपनी बगल में लड़का हो और सारे गाँव में लड़के को ढूंढने निकलती है, इसी तरह अध्यात्मदृष्टि से हीन मनुष्य, आत्मा को भूलकर इधर उधर धर्म के नाम की आवाज लगाकर ढूंढने निकलता है। "अज्ञानी पशु आत्मा" "अज्ञानी आत्मा पशु के समान है। अध्यात्मज्ञान के बिना धर्म कहां मिला है? धर्म किस प्रकार का होता है? आदि नहीं समझा जा सकता। अध्यात्मज्ञान की अभिरुचिवाले जीव नहीं

अध्यात्म को धिक्कारे ! परन्तु जैसे सूर्य अरुचिवाले चिमगादड़ सूर्य के सामने नहीं देख सकते, इससे सूर्य की महिमा कम नहीं होती; वैसे अज्ञानी जीवों के शोरगुल से अध्यात्मज्ञान की महिमा कम नहीं होती। सम्पूर्ण जगत् के धर्मों के मूल को देखें तो अध्यात्मज्ञान में ही समाविष्ट दिखाई देगा। जिस धर्म में अध्यात्मविद्या नहीं है उस धर्म की जड़ गहरी नहीं होती और इससे अध्यात्मविद्या के बिना वाला धर्म किसी भी जोर के धक्के से मूल से नष्ट हो जाता है। शिक्षितों के आगे अध्यात्मज्ञान बिना कोई धर्म परीक्षा में टिक नहीं सकता। अध्यात्मज्ञान बिना कोई धर्म विद्वानों के हृदय में गहरी असर नहीं कर सकता। दुनिया की समस्त वस्तुओं पर से ममता छुड़ाने वाला वस्तुतः अध्यात्मज्ञान है। जिन मनुष्यों की बुद्धि स्थूल है और जिनकी बुद्धि सूक्ष्म तत्त्वों में प्रवेश नहीं करती ऐसे मूर्ख मनुष्य, अध्यात्मज्ञान के अधिकारी नहीं हो सकते। पार्लियामेंट का प्रधान बनना जिस तरह कठिन है उसी तरह अध्यात्मज्ञान का अधिकारी बनने का कार्य भी मुश्किल है। आत्मा के सहज सुख का स्वाद लेना हो तो अध्यात्मज्ञान का अधिकारी बनना चाहिए। जो लोग अध्यात्मज्ञान से शून्य होते हैं उनके आचरण का पता लगाया जावे तो चार्वाक की तरह, ऐहिक सुखों के लिए उनकी समस्त प्रवृत्ति मालूम पड़ेगी। अध्यात्मज्ञानरूप सूर्य के सामने तारों की तरह अन्य ज्ञान भी मंद पड़ जाता है उस समय अन्य पदार्थों के ज्ञान की कोई गिनती नहीं होती। ऐसा उत्तम अध्यात्मज्ञान प्राप्त करना यह सद्गुरु की पूर्ण कृपा बिना सम्भव नहीं हो सकता। हरिण जैसे सिंह से डरता है वैसे बाल्जीव विषयों के वश में होने से हरिण जैसे बन जाते हैं और इसलिए वे अध्यात्मज्ञानरूप सिंह से डरते हैं। किसी

नय का प्रयोग करना सीखना चाहिए, आत्मा पर सात नयों को उतारना चाहिए।

अध्यात्मज्ञान होने के लिए नयों की आवश्यकता

आत्मतत्त्व का ज्ञान करना कोई सामान्य बात नहीं है। आत्मतत्त्व का ज्ञान करने के लिए सात नय और सप्तभंगी के ज्ञान की जरूरत है। सात नय और सप्तभंगी का भी गुरुगम-पूर्वक ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। गुरुगम बिना तो एक क्षण भी वीतराग के शासन में चलने वाला नहीं है। गुरुगम बिना जैन सिद्धांत का हृदय में सम्यक्परिणमन नहीं होता। आत्मतत्त्व सम्बन्धी दुनियां में अनेक ग्रन्थ लिखे हुए हैं। दवा लेने से पहले जैसे डाक्टर की सलाह की उपयोगिता है, वैसे आत्मज्ञान के ग्रन्थ पढ़ने से पहले गुरुगम की उपयोगिता है। जैनागमों में योगोद्वहन कर गुरु से सूत्र पढ़ने की आज्ञा दी है, यह भी इस बात को सिद्ध करता है कि—आचार्यों वा उपाध्यायों का गुरुगम लिए बिना पढ़ने से, अर्थ का अनर्थ हो जाय और पढ़ने वालों में एक सूत्र के अर्थ सम्बन्धी भी भिन्न-भिन्न मत हो जाय, इसलिए योगोद्वहन कर गुरु के पास अध्यात्मज्ञान की प्राप्ति के लिए सूत्र पढ़ने की आवश्यकता सिद्ध होती है। श्री सर्वज्ञप्रणीत जैनागमों द्वारा अध्यात्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त करने की जरूरत है। जैनागमों की श्रद्धा और पूज्यता-पूर्वक शास्त्रों की आराधना कर जो अध्यात्मज्ञान प्राप्त किया जाता है उसमें कदापि शुष्कता प्राप्त नहीं होती। जैनागमों द्वारा प्रथम अध्यात्मज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करना जिससे सम्यग् अध्यात्मज्ञान की प्राप्ति हो सके। गुण दोष जाने बिना चाहे जैसी दवा पेट में डालने वाला मनुष्य मृत्यु की शरण में जाता है, तद्वत् सम्यक्शास्त्रों और मिथ्याशास्त्रों

का स्वरूप समझे बिना चाहे कोई ग्रन्थ पढ़कर, स्वच्छंदता को स्वतंत्रता मानकर अध्यात्मज्ञान के लिए प्रयत्न करने वाले की विपरीत दशा देखने में आती है। एक-एक नय की दृष्टि से बनाये गये आत्मतत्त्व सम्बन्धी ग्रन्थ, अन्य नयों की सापेक्षता बिना आत्मतत्त्व का बोध बताने में समर्थ नहीं होते। समुद्र के जलबिंदुओं को पार किया जा सकता है परन्तु शास्त्रों के रहस्यों का पता नहीं पाया जा सकता। तैरना न आता हो और समुद्र में कूदा जाय तो उससे मृत्यु ही होगी। इसी तरह शास्त्रों की अपेक्षा समझे बिना आत्मतत्त्वसम्बन्धी गुरुगम बिना पढ़ा जाय तो विपरीत फल मिल सकता है। एकान्त से दृश्य ऐसे व्यवहारनय को मानने वाले मनुष्यों से चार्वाक अर्थात् जड़वाद की उत्पत्ति हुई है। ऋजुसूत्र नय को एकांत से स्वीकार कर, ऋजुसूत्र नय से आत्मतत्त्व का कथन कर और अन्य नय को हटाकर बौद्ध दर्शन पैदा हुआ है। एकांत संग्रहनय से अद्वैतवाद उत्पन्न हुआ है; इस प्रकार प्रत्येक नय को एकांत मान्यताओं के आत्मतत्त्व सम्बन्धी दर्शन दुनिया में बहुत हैं, उनके बारे में विवेचन किया जाय जो एक बड़ा ग्रन्थ तैयार हो जाय। हरएक नय की सम्पूर्ण अपेक्षा को स्वीकार कर आत्मतत्त्व का कथन करने वाला दुनिया में कोई भी दर्शन है तो वह वास्तव में जैन दर्शन है। सारी दुनिया के दर्शनों को नयों की अपेक्षा से सत्य और असत्य का भेद कर न्याय देने वाला जैन दर्शन है।

जैन दर्शन की मान्यता के अनुसार आत्मतत्त्व का ज्ञान किये बिना जैन शैली से अध्यात्मज्ञान प्राप्त किया है ऐसा नहीं कहा जा सकता। अध्यात्मज्ञान के दो-चार पद पढ़ लिए उससे मात्र से अध्यात्मज्ञानी नहीं बना जा सकता। जैन दर्शन की शैली से अध्यात्मज्ञान प्राप्त करने के बाद अन्य दर्शनकार

अध्यात्म की कैसी व्याख्या करते हैं यह जानना सरल हो सकता है।

सप्तभंगी से आत्मज्ञान

सप्तभंगी से आत्मद्रव्य के गुण और पर्यायों का स्वरूप समझने से अनेकांत धर्म का सम्यग् बोध होता है। और उससे आत्मा के अनंत धर्म, किस किस अपेक्षा से अस्तिरूप में और नास्तिरूप में घटित होते हैं इसका पता चलता है, अन्य दर्शनियों को सप्तभंगी का स्वरूप नहीं समझने से वे सप्तभंगी पर प्रहार करने का प्रयत्न करते हैं। गुरुगम बिना एकदम सप्तभंगी का ज्ञान प्रकट नहीं होता। शंकराचार्य वगैरह ने ब्रह्मसूत्र द्वारा सप्तभंगी का खण्डन करने का प्रयत्न किया है, परन्तु सप्तभंगी का खण्डन करने से पहले सप्तभंगी का गुरुगम पूर्वक ज्ञान प्राप्त किया होता तो वे सप्तभंगी का खण्डन करने का प्रयत्न नहीं करते। सप्तभंगी का ज्ञान प्राप्त कर उसके द्वारा आत्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करना जरूरी है। सप्तभंगी का ज्ञानप्रदेश अत्यंत विस्तीर्ण है। सप्तभंगी के ज्ञानरूप प्रदेशों की पूरी जानकारी प्राप्त कर सकें ऐसे विरले ही गीतार्थ गुरुप होते हैं। सप्तभंगी के खण्डन का प्रयत्न करना यह हवा के सामने तोपों से युद्ध करने के समान है। सप्तभंगी द्वारा आत्मतत्त्व का ज्ञान करने वाले महात्मा अध्यात्मज्ञान में बहुत गहरे उतर जाते हैं। एक वस्तु को करोड़ों दृष्टि से देखा जाय तब भी उसमें कुछ न कुछ देखना बाकी रह जाता है। एक वस्तु को असंख्य दृष्टि से देखा जाय तब श्रुतज्ञान की अपेक्षा से उस वस्तु का ज्ञान प्राप्त किया है ऐसा कहा जा सकता है। असंख्य-असंख्य दृष्टियों की सामर्थ्य भी जिसमें समा जाती है ऐसे सप्त-

भंगी के ज्ञान का पार पाना दुर्लभ है। फिर भी गुरुगम द्वारा सप्तभंगी का ज्ञान प्राप्त करने का दिन-रात प्रयत्न करने से सप्तभंगी के ज्ञान की सहज झांकी होती है। सप्तभंगी का ज्ञान प्राप्त कर आत्मद्रव्य के अनंत गुण और अनंत पर्यायों की सप्त-भंगी से शोध करना चाहिए। आत्मा के अनेक धर्म पर सप्तभंगी उतार कर आत्मद्रव्य का ज्ञान करने से असंख्य दृष्टियों जितना ज्ञान प्राप्त होता है, और इससे एक एक दृष्टि से निकले पंथों पर वाद में कुछ भी महत्त्व नजर नहीं आता। सप्तभंगी से आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरु परंपरा की शरण अंगीकार करना चाहिए। गुरु के चरण कमलों की सेवा करने से बहुत वर्षों बाद आत्मद्रव्य-ज्ञान का परिपक्व अनुभव प्राप्त होता है। जितनी गुरुगम की कमी उतनी आत्मज्ञान की कमी समझना।

आत्मद्रव्य की सम्यक् प्रतीति

आत्मद्रव्य को नय और सप्तभंगी द्वारा समझने से आत्म-द्रव्य की सम्यक् प्रतीति होती है, पश्चात् आत्मद्रव्य के साथ बांधे कर्मों का नाश करने की सच्ची रुचि प्रकट होती है। आत्मद्रव्य का ज्ञान प्राप्त करने से उपशमादि सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है और उससे द्वितीया के चाँद की तरह, आत्म-तत्त्व का प्रकाश खिल सकता है। आत्मा स्वयं अपना स्वरूप पहिचानता है और उसका अनुभव करता है तब अद्भुत आनंदरस का भोक्ता बनता है। और उसे अपूर्व सुख प्राप्त हुआ है ऐसा निश्चय करता है। सम्यक् चेतनतत्त्व की प्रतीति के पश्चात् आत्मा अपना शुद्ध चारित्र प्राप्त करने के लिए व्यव-हार और निश्चय नय का अवलंबन लेकर प्रयत्न करता है। वीतराग के वचनों का परिपूर्ण रहस्य समझकर वह आनंद

मग्न हो जाता है। वर्तमान काल में 'अल्पज्ञान और अतिहानि' ऐसा प्रसंग उपस्थित हो ऐसी स्थिति में बहुत से मनुष्य देखने में आते हैं। आत्मबंधुओं को आगमों के आधार पर आत्मज्ञान के गहरे प्रदेश में उतरने का प्रयत्न प्रतिदिन करना चाहिए। आत्मज्ञान मुझे प्राप्त हुआ है ऐसा कहने वाले तो बहुत मिलते हैं, परन्तु स्याद्वाद दृष्टि से आत्मतत्त्व का कथन करने वाले विरले ही मिलते हैं। आत्मतत्त्व को समझने की शक्ति जिसमें न हो वे आत्मज्ञानी होने का ढिंढोरा पिटें तो इससे आत्मा को वास्तविक उन्नति नहीं होती।

मोह के अध्यवसायों के प्रकट होते ही उन्हें दूर करने के लिए आत्मज्ञानी प्रयत्न करते हैं, आत्मतत्त्वज्ञानी मोह को मोह रूप में जानते हैं और धर्म को धर्मरूप में जानते हैं; वे सत्य को नहीं छोड़ते और असत्य का आडम्बर नहीं रखते। वे अपने में जितना होता है उससे अधिक नहीं बताते हैं। आत्मतत्त्वज्ञान प्राप्त हुए बिना जीव सम्यक्त्वी नहीं गिना जाता। आगमों के आधार को देखते हुए मालूम होता है कि ऐसा अपूर्व आत्म-तत्त्व समझे बिना वस्तुतः सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस काल में आगमों को आगे रखकर जो आत्मतत्त्व जानने की इच्छा करते हैं, वे धन्यवाद के पात्र हैं। आत्मतत्त्व की जिज्ञासा जिनके हृदय में उत्पन्न होती है वे पुरुष धन्यवाद के पात्र हैं। आत्मबल प्राप्त करना हो तो आत्मतत्त्व को पहि-चानना चाहिए। अनेक आलंबनों से आत्मा की शुद्धि कर आत्मा की परमात्मदशा बनाये बिना संसार से पार पाना कठिन है; असंख्य उपकारों में शिरोमणि ऐसा अध्यात्मज्ञान का उपदेश है। अध्यात्मज्ञान के अनुसार होकर आत्मतत्त्वज्ञ होना यही परम मंगल

भावाध्यात्मज्ञान में विचरण करने वाले, जो कुछ वास्तव में प्राप्त करना होता है वे प्राप्त कर सकते हैं। स्याद्वादभाव से वस्तुतत्त्व का बोध होने से वे अनेकांतवादियों के आचारों और विचारों में रहे सत्य तत्त्व और असत्य तत्त्व को देखने में समर्थ होते हैं। स्याद्वादभाव से आत्मा को समझने वाले अध्यात्मज्ञानी विकल्प-संकल्परूप संसार को भूल जाते हैं वे शुद्ध, बुद्ध, चैतन्यतत्त्व के स्वाभाविक आनंदरस को ग्रहण करते हैं। उनके हृदयाकाश में द्वितीया के चंद्र की तरह सम्यक् तत्त्व गुण का तेज प्रकाशित होता है, इससे वे अल्पकाल में मुक्ति के अधिकारी होते हैं. पौद्गलिक सृष्टि में विचरते मन को वे आत्मसृष्टि की अलौकिक लीला में लीन करते हैं और पौद्गलिक सृष्टि के पदार्थों के उस पार रहे सहजसुख का अनुभव करते हैं।

अध्यात्मज्ञानी की भावना

अध्यात्मज्ञानी विचार करता है कि अहो ! निश्चयनय से मेरी आत्मा वस्तुतः परमात्मा है, सिद्ध है, बुद्ध है, निर्लेप है, अयोगी है, अलेशी है, अकषायी है, अचंचल है, निष्कंप है, अयोनि है, अज है, अखंड है, अनंत है, अपार है, अपरंपर है, अभोगी है, असंहायी है, अजन्म है, अमर है, प्रभु है, ईश है, जगन्नाथ है, जगदीश है, अशरण शरण है, परमेश है, ब्रह्म है, विष्णु है, शंकर है, अरिहंत है, शंभु है, सदाशिव है, अनंत शक्तिमान है, अनंत गुणपर्याय का भाजन है, अकर्त्ता है, अभोक्ता है, अशोकी है, निर्भय है, निर्मोही है, निर्लोभी है, विकल्पसंकल्प रहित है, अव्याबाध है, अविनाशी है, अरूपी है, अक्रिय है, अनंतज्ञानी है, अनंतदर्शी है, अनंतवीर्यमय है, अनंत चारित्रमय है, अवेदी

अवेदी है, अस्पर्शी है, अवर्णी है, अगंधी है, असंस्थानी है, रूपातीत है, एक है, अनेक है, अस्तिनास्तिधर्ममय है, वक्तव्य है, अवक्तव्य है, अगुरु-लघु है, अनाश्रयी है, अशरीरी है, मन रहित है, वचन रहित है, सब का द्रष्टा है, सब का साक्षी है, अनन्य गुणमयी है, अबंधी है, पूर्ण है, नित्य है, ध्रुव है, ज्योतिरूप है, असंख्य प्रदेशी है, स्वस्वरूपरमणी है, स्वस्वरूप भोगी है, स्वस्वरूप का योगी है, अनंतधर्म का दानी है, षड्गुण हानि-वृद्धि युक्त है; इस तरह अध्यात्मज्ञानी अपनी आत्मा की सत्ता को भाता, ध्याता और अनुभवता बाह्य शाता और अशाता के प्रसंगों को समभाव से वेदता है और समभाव में रहकर अनंत कर्म की निर्जरा करता हुआ विचरण करता है। सिद्धांतों में भी जहां मुनियों के अधिकार आये हैं वहां अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। 'आत्मा को भाता हुआ विचरता है' इसतरह अनेक दृष्टांत पढ़ने में आते हैं। अध्यात्मज्ञानी अपनी आत्मा में रही परम सत्ता को निश्चयनय से ध्याता है उसका कारण यह है कि आत्मा में रहा परमात्मा वस्तुतः परमात्म सत्ता का ध्यान करने से प्रकट हो जाता है। अध्यात्मज्ञानी जैसे जैसे आत्मा का ध्यान करता है वैसे वैसे उसे आत्मा के असंख्यात प्रदेश में रही अनंत ऋद्धि की प्रतीति होती है। अध्यात्म-ज्ञानादि गुणों में रमणता करने से जो आनंद मिलता है, वह आनंद तीन लोक के सभी पदार्थों को अनन्तर भोगने से भी नहीं मिलता; ऐसा दृढ़ निश्चय होने से परभावरमणता में [illegible] [illegible] की रुचि नहीं रहती। अध्यात्मज्ञानी के शरीर को देखने से [illegible] उसकी आत्मा को देखने से उसकी महत्ता मालूम होती है। अध्यात्मज्ञानी सारी तरह, [illegible] से भिन्न होते हुए भी उसमें आत्मिकता का निश्चय नहीं करता, इसलिये

पौद्गलिक सृष्टि के पदार्थों से वह बंधता नहीं। अध्यात्मज्ञानी अपनी आत्मा की अनंतशक्ति को जानता है इसलिए वह आलस्य आदि प्रमाद के वश में नहीं होता और अमुक आत्म-धर्म की प्राप्ति अशक्य है ऐसा वह नहीं मानता। अध्यात्म-ज्ञानी केवल बाहर से ही वस्तु का स्वरूप देख सकता है इतना ही नहीं परंतु वस्तु का अंतर स्वरूप भी देख सकता है जिससे वह अपने (आत्मा में) में रही अनन्त लब्धि को देखकर उसका निश्चय करता है और वह दीनभाव का तो स्वप्न में आश्रय नहीं लेता; उसकी अंतर की दशा होने से वह पर के आधार से परतंत्र होना स्वीकार नहीं करता। वह अपने गुणों का ही आश्रय लेकर स्वाश्रयी होकर, दूसरों को भी स्वाश्रयी बनाने का प्रयत्न करता है। अध्यात्मज्ञानी सात प्रकार के भय में भी निर्भय रहने के लिये मन का गुरु बनकर मन को उपदेश देकर, देश की तरफ गमन कर निर्भय परिणाम को प्राप्त करता है।

अभिनव विचार

अध्यात्मज्ञानी मन पर लगे आर्तध्यान और रौद्रध्यान के अनंतगुण भार को छोड़ देता है और हलका होकर शांति प्राप्त करता है। ताजी हवा से मस्तिष्क जैसे प्रफुल्लित होता है वैसे अध्यात्मज्ञानी अभिनव अनुभवज्ञान के विचारों से ताजा होता है और आनंद की लहर में आंतरजीवन को बहाता है। अध्यात्मज्ञानी प्रतिदिन अभिनवज्ञान के ताजे विचारों को ध्यान धरकर प्राप्त करता है। हाथी के पीछे कुत्ते जैसे भौंकते रहते हैं फिर भी हाथी उधर ध्यान नहीं देता, उसी तरह अध्यात्मज्ञानी भी दुनिया के मनुष्यों के भिन्न भिन्न आक्षेप-तिरस्कार-उपाधि की तरफ ध्यान नहीं देता। यदि कभी वह आर्तध्यानादि के झपाटे में आ भी जाता है तब भी

वह ज्ञान बल के प्रताप से बाद में अपने स्वभाव में आ जाता है।

अध्यात्मज्ञानी सदा जगत् की शांति की इच्छा करते हैं। किसी भी अपराधी जीव को दुःख देने की उनमें इच्छा नहीं होती। अध्यात्मज्ञानी किसी को मानसिक दुःख हो इस प्रकार नहीं बोलते, वैसे लिखते भी नहीं। अध्यात्मज्ञानी मन, वाणी और काया की शक्तियों का अधिक से अधिक सदुपयोग करते हैं, जिससे वे जगत् में महात्मा माने जाते हैं। अध्यात्मज्ञानी श्री वीतरागदेव के वचनों को अमृत समान मानते हैं और उसके अनुसार आचरण करने का प्रयत्न करते हैं। अध्यात्म-ज्ञानी का धर्मप्रेम सर्वोत्तम होता है और वे कषाय के तीव्र परिणाम को, भावना द्वारा मंद कर देते हैं। बाह्य दृष्टि वाले मनुष्यों का व्यापार बाह्य होता है, परन्तु अध्यात्मज्ञानियों का व्यापार तो अंतर में सद्गुणों को प्राप्त करने के लिए क्षण क्षण चलता रहता है। बाह्यदृष्टिधारक क्रोधादि के परिणाम की तोप अपनी तरफ खड़ी कर छोड़ता है और अंतरदृष्टि-धारक अध्यात्मज्ञानी तो समभावरूप तोप से मोह चोर का नाश करते हैं। बाह्यदृष्टिधारक चाहे जिस तरह स्वार्थादि से प्रेरित होकर अनीति की तरफ वृत्ति करते हैं और अध्यात्मी विवेक मनुष्य मोक्ष मार्ग की तरफ प्रवृत्ति करते हैं। अध्या-त्मज्ञ तो सोचते हैं कि 'अपनी शुद्ध भावना से अपनी आत्मा का पोषण करना"। इस संसार में कोई वस्तु अपनी नहीं, संध्याराग की तरह पदार्थों की अनित्यता है। जिन जड़ पदार्थों के लिए यह मन मिटता है वे कभी परभव में साथ नहीं आते। जड़ पदार्थों को अपना मानने की ममत्व की भावना वास्तव में अनेक प्रकार के दुःख देती है। अनेक

प्रकार के व्यापारों में मनुष्य रात-दिन मर मिटता है, परन्तु उन व्यापारों से मनुष्य की आत्मा को सच्ची शांति—सच्चा सुख नहीं मिलता, फिर किसलिए बाह्य पदार्थों के व्यापार में आयुष्य को समाप्त करना चाहिए ? जिन जिन वस्तुओं के लिए प्राण दिया जाता है वे वस्तुएं प्राण देने वाले के आत्मा की कीमत करने में शक्तिमान नहीं है; ऐसा प्रत्यक्ष जानते हुए कौन मनुष्य संसार की वस्तुओं में ममत्व की कल्पना को छोड़ शांति की खोज नहीं करेगा ? जगत् के जड़ पदार्थों में ममत्व की कल्पना से उन पदार्थों के सेवक बनकर, श्रेष्ठता से भ्रष्ट होकर उनकी रक्षा करनी पड़ती है। जिन पदार्थों के विना काम नहीं चलता और जिन पदार्थों को साथ रखने की आवश्यकता प्रतीत होती है, वे पदार्थ अंतरदृष्टि से देखें तो अपने पास हैं। जो पदार्थ आवश्यकता से अधिक हों और जिनको अपने पास रखने से दूसरों को असुविधा हो उन पदार्थों को अपने पास रखकर दूसरों को न देते हों, वे अध्यात्मदृष्टि से सम्यक्त्व का मूल दया को समझने में समर्थ नहीं होते।

इस तरह अध्यात्मज्ञानी विचार कर परिग्रहादि ममत्व से नहीं बंधते। वे शरीर में तथा संसार में विद्यमान समस्त पदार्थों से अपने को अलग मानते हैं और जो जड़ पदार्थों में बंध गये हैं उन्हें छुड़ाने का प्रयत्न करते हैं। दुनिया में मूर्ख मनुष्य जिन पदार्थों के लिए अथ बहाता है उन पदार्थों के प्रति अध्यात्मज्ञानी मध्यस्थ दृष्टि से देखते रहते हैं। मूढ़ मनुष्यों के रात्रि के समय अध्यात्मज्ञानी जागृत रहते हैं और उन्हें जगाने का प्रयत्न करते हैं। जबकि अज्ञानी मनुष्य जड़ पदार्थों में राग करते हैं, और जड़ पदार्थों की प्राप्ति के लिए मर मिटते हैं।

सब आत्मज्ञानी जीवों पर शुद्ध प्रेम रखते हैं, और उनको आत्मा का ज्ञान प्रकाश विकसित करने का उपदेश देते हैं। अध्यात्मज्ञानी सद्गुणों का व्यापार करने का मुख्य लक्ष्य रखते हैं, और इसी के लिए उनका जीवन है। अध्यात्मज्ञानी उपाधि का त्याग कर यदा-कदा जगत् में विचरते हैं—वे जो करते हैं, जो देखते हैं, जो सुनते हैं, जो बोलते हैं, और जो पढ़ते हैं उनमें अलौकिकता का अनुभव करते हैं। मूढ़ मनुष्यों की दृष्टि की अपेक्षा उनकी दृष्टि अनंतगुणी शुद्ध होने से उनकी आंखें और उनका हृदय में देखना और सोचना उच्च प्रकार का होता है। वे धर्म के व्यवहार मार्ग का लोप नहीं करते और धर्म की क्रियाओं में वास्तविक परमार्थता का अनुभव करते हैं। अध्यात्मज्ञानी पिंजरे में बंद पक्षी की तरह संसार से मुक्त होने की इच्छा करते हैं, सांसारिक पदार्थों में सुख की बुद्धि नहीं होने से वे आत्म सुख की तरफ वृत्ति वाले हैं, और आत्मसुख प्राप्त करने के लिए देव, गुरु और धर्म की आराधना करते हैं। राग द्वेष का त्याग कर और सांसारिक आश्रव मार्गों का त्याग कर वे आत्मा को भाते हुए विचरते हैं ऐसे महामुनियों को सच्चा अध्यात्मज्ञान प्रकट होता है। चौथे और पांचवें गुणस्थानक वाले जीवों को सम्यग्ज्ञान रूप अध्यात्मज्ञान उत्पन्न होता है, और इससे वे संसाररूप जेल से छूटने की बारंबार तीव्र इच्छा करते हैं. चौथे और पांचवें गुणस्थानक वाले जीवों को साधु होने की तीव्र भावना होती है। और इससे वे चौथे और पांचवें गुणस्थानक पर रह सकते हैं। जिन्हें साधु दीक्षा अंगीकार करने की भावना नहीं है वे अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में या देशविरति गुणस्थानक में नहीं रह सकते। साधु होने का जिनके मन में परिणाम न हो वे

श्रावकपन से भृष्ट होते हैं, ऊपर का उच्च गुणस्थानक धारण करने की इच्छा विना चौथे अथवा पाँचवें गुणस्थानक में नहीं रहा जा सकता। **आत्मा को सुख का स्थान समझे बाद कौन बंधन से मुक्त होने की इच्छा नहीं करता ?**

अध्यात्मज्ञान से जड़वाद का नाश

जब जगत् में जड़वादियों की बड़ी संख्या अस्तित्व में आ जाती है तब उसके सामने आत्मवादी खड़े रहकर अनेक दलीलें देकर जड़वाद का नाश करने में अद्भुत पराक्रम दर्शाने वाले अध्यात्मविद्या से, मनुष्यों के हृदय में रहा नास्तिक भाव दूर हो जाता है, **जैन जिसे अध्यात्मज्ञान कहते हैं उसे वेदांती ब्रह्म विद्या आत्म विद्या, आदि नामों से पहिचानते हैं।** वास्तव में देखा जाय तो जैन शास्त्रों से अध्यात्म विद्या की सिद्धि होती है जड़वादियों के सामने आत्म विद्या टिक सकती है। आत्मज्ञानरूप क्षेत्र में धर्मानुष्ठान बढ़ जाते हैं, हाल में यूरोप तथा एशिया आदि खण्ड में जड़वादियों की संख्या बढ़ती जाती है। और जिनसे वे ईश्वर, पुण्य, पाप, पुनर्जन्म, आत्मा आदि को स्वीकार नहीं करते ऐसे लोगों की बढ़ती संख्या को देखकर जिनके मन में कुछ खटकता हो ऐसे मनुष्यों को अध्यात्म विद्या का प्रचार करने के लिए तैयार होना चाहिए। अंधकार का नाश वास्तव में प्रकाश बिना नहीं होता, वैसे जड़वादियों के नास्तिक विचारों का नाश वस्तुतः अध्यात्मज्ञान बिना नहीं होता। जड़वादियों की आत्मा में चैतन्यरस डालने वाली अध्यात्मविद्या है जड़वादियों के लिए सत्य प्रकट करने वाली वास्तव में आत्म विद्या है। चार्वाकों की दलीलों को तोड़कर अध्यात्मविद्या चैतन्य प्रदेश में ले जाती है। **अध्यात्मज्ञान ही**

विज्ञानवादियों की अंतिम से अंतिम शोध होनी है। केवलज्ञान से श्री महावीर प्रभु ने आत्मा को देखा है, जाना है—ऐसी आत्मा को शोध करने वाले अनेक योगी हो गये हैं और उन्होंने आत्मा का स्याद्वाद भाव से अस्तित्व स्वीकार किया है। अध्यात्मविद्या से चैतन्यवाद-आत्मवाद स्वीकार किया जा सकता है, अध्यात्मविद्या, यह मूर्खों की दृष्टि में बेकार और ज्ञानियों की दृष्टि में परम रत्न है।

आत्मविद्या का प्रकार

अध्यात्मविद्या का बगीचा आर्यावर्त में विकसित हुआ है और उसकी महक आसपास के देशों में जाने लगी है। भारत-देश के निवासी यूरोप आदि देशों को अध्यात्मज्ञान देकर उनके गुरु बन सकते हैं। आर्यावर्त की भूमि में अध्यात्मविद्या के विचार प्रकट होते हैं और उनका पोषण भी इस देश में होता है। भारतवासियों के भाग्य में आत्मविद्या का गुरु बनना लिखा है। भारतवासी पाश्चात्य देशों के संसर्ग से नास्तिकता की ओर झुकेंगे परन्तु अंत में तो चैतन्य प्रदेश में आना ही पड़ेगा। अध्यात्मज्ञान के उदयकाल में आर्यावर्त स्वतंत्र था और आर्य लोग आर्यत्व गुणों से अलंकृत थे, इसलिए वे परस्पर एक दूसरे की आत्मा को सहायता दे सकते थे और वे देह की अपेक्षा आत्मा को परमात्मा के समान कीमत आंक सकते थे और वे उदय की श्रृंखला से बंधे हुए थे।

आर्यावर्त का अध्यात्म विद्या से उदय

अध्यात्मविद्या का प्रकाश मंद होने से आर्यावर्त में मोह का ओर बढ़ने लगा, इससे शरीर-ममत्व आदि, माया के प्रेमों में बड़भागी होकर दुर्गुणों के आधीन हो गये और परतंत्रता की

वेड़ी में जकड़ गये। स्वतंत्रता के लिए भारतवासी चिल्लाते हैं, परन्तु वे आत्मरूप राजा की पूजा छोड़कर शरीररूपी महल की पूजा में अनेक पापों से मग्न हैं वहां तक, वे वास्तविक उन्नति के द्वार पर पैर नहीं रख सकते। जड़वाद के आश्रय से जो लोग अपनी उन्नति करना चाहते हैं वे क्षणिक उन्नति के उपासक हैं और सच्ची उन्नति को धक्का मारते हैं। जड़वाद के विचारों में सच्ची उन्नति का स्वप्न है। जब कि जड़वादी अनीति के मार्ग पर वा अधर्म के मार्ग पर चलकर, रजोगुण और तमोगुण द्वारा बाह्य साधनों की उन्नति करने में समर्थ बने! परन्तु जड़वाद के विचारों से की गई उन्नति को टिका रखने में वे समर्थ नहीं हो सकते। वे जगत् के स्वार्थ का त्याग कर वास्तविक रूप में आत्मभोग नहीं दे सकते। जड़वादी शरीर के सुख के लिए जो कार्य करना होता है वह करते हैं और यही उनका मूल मंत्र है। वे शरीर को महत्वपूर्ण गिनकर सुख का बिंदु बाह्य साधनों में ही मानते हैं। ऐसी उनकी विचार-श्रेणी से वे अपनी वास्तविक दृष्टि को भूल जाते हैं और स्वार्थ को आगे कर पुण्य पाप गिने बिना सब काम करते हैं। आत्मवादी ईश्वर, पुनर्जन्म, कर्म, आत्मा आदि तत्वों को स्वीकार कर सकते हैं, और शरीर को एक घर जैसा मानते हैं और उसमें रहे आत्मा को महान् प्रकाशक मानते हैं। आत्मवादी ईश्वरीयोपदेश के अनुसार चलकर अपनी आत्मा की उन्नति करते हैं और सम्पूर्ण जगत् की उन्नति करने में समर्थ होते हैं। आत्मवादी अर्थात् चैतन्यवादी दूसरों की आत्मा का मूल्य समझकर उनकी सेवा में अपनी शक्ति का उपयोग करते हैं। आत्मवादी सद्विचार का हवाई जहाज में बैठकर सम्पूर्ण जगत् की तरफ दृष्टि करने में समर्थ होते हैं और अपनी आत्मा

की उच्चता होने पर भी अन्य आत्माओं को सहायता दे सकते हैं। वे पुनर्जन्मवाद को श्रद्धागम्य मानते हैं इसलिए वे अपना सर्वस्व अर्पण करने में जरा भी नहीं हिचकते, वे वास्तविक उन्नति के इच्छुक होने से बाह्य साधनों की प्राप्ति के लिए द्वेष, क्लेश, स्वार्थ, मारामारी आदि कर जगत् को अशांत करने का प्रयत्न नहीं करते। भारतवर्ष के चैतन्यवाद का सूर्य, अपने सद्विचार रूपी किरणों का सम्पूर्ण जगत् पर प्रकाश करने में समर्थ होता है। आज चैतन्यवाद का सूर्य मंद प्रकाश करता है, परन्तु श्रद्धागम्य आत्मवाद हो ऐसे उपाय किये जावें तो, आर्य पूर्व की सच्ची उन्नति कर सकते हैं। आर्यावर्त का उदय वास्तव में आत्मविद्या में समाया हुआ है। आत्मविद्याधारक आर्यों में, सब प्रकार के कार्य करने की शक्तियां प्रकट हो सकती हैं। श्री महावीर प्रभु ने आत्मा को आत्मरूप में बताकर आर्यावर्त पर जो उपकार किया है उसका अंदाज नहीं लगाया जा सकता।

आर्यों की अवनति का कारण

आर्यदेश के मनुष्यों में जैसे जैसे अज्ञानरूप अंधकार फैलने लगा वैसे वैसे वे सच्चे सुख के प्रकाश से दूर होने लगे और इससे उनमें कई मत-मतांतर उत्पन्न हुए और मनुष्य, अपनी आत्मा का स्वरूप भूलकर माया के प्रदेश में सुख की बुद्धि रखकर व्यसन के फंदे में फंस गया। अज्ञान मोह से भीतर ही भीतर [illegible] करके अपने ही हाथ से अपनी अवनति का गड्ढा खोदने लगे, जिससे वे भविष्य की प्रजा के नाश का सबब बन गये! और इससे परदेश [illegible] में रहने लगी। आत्मा की महत्ता भूल जाने से, मोह का जोर बढ़ने से, मनुष्य जीवन के सच्चे उद्देश्य से मनुष्य दूर जाने

लगे, इसलिए वे भविष्य की प्रजा को उत्तम संस्कार देने में समर्थ नहीं हुए; इन कारणों से आर्यों का आत्मबल कम होने लगा। धर्म की क्रिया के सामान्य भेदों को बड़ा रूप देकर आर्य परस्पर द्वेष, ईर्षा और क्लेश कर शरीर में रही आत्मा को धिक्कारने लगे, और इससे धर्मक्रिया के मतभेद से असहिष्णुता बढ़ने लगी। ऐसी स्थिति होने पर भी आत्मोन्नति के मूल प्रदेश में आने के लिए जितना चाहिए उतना प्रयत्न नहीं किया गया और जो कुछ भी प्रयत्न किया गया वह भी परिपूर्ण और विघ्नरहित नहीं हुआ, जिससे भारतवासी आत्मोन्नति के स्थान से दूर जाने लगे। **वास्तव में चैतन्यवादी अपने सद्विचार और सदाचार के अनुसार हमेशा जागृत रहे होते और अपना कर्तव्य जगत् के प्रति अच्छी तरह व्यवस्थित रूप से पूरा किया होता तो आत्मोन्नति के मार्ग से दूर नहीं हो सकते थे।** श्री वीरप्रभु ने केवलज्ञान द्वारा स्याद्वादशैली से आत्मतत्त्व का उपदेश दिया था, उसका प्रचार सारे जगत् में होता तो वर्तमान दुनिया स्वर्ग समान होती। श्री वीरप्रभु ने चैतन्यवाद का प्रचार करने का जो प्रयत्न किया है उसका मूल्य नहीं आंका जा सकता। श्री महावीर प्रभु ने चैतन्यवाद का प्रचार कर भारतवर्ष में जो अपूर्व प्रकाश किया है उसकी झांकी अभी भी दिखाई देती है।

मुनियों के द्वारा अध्यात्मज्ञान का प्रचार

अध्यात्मविद्या के शास्त्र अभी भी मौजूद हैं। अध्यात्मविद्या के विचार देशकाल के अनुसार अपने आचरण में उतारे जांय ऐसी व्यवस्था बनाकर जीवन की उच्च दशा करने की जरूरत है। **श्री वीरप्रभु द्वारा उपदेशित आगमों में अध्यात्मविद्या का पूर्ण खजाना है।** अध्यात्मविद्या के पूर्ण खजाने-

रूप आगमों का उपदेश देनेवाले अपने परम पूज्य मुनिवर हैं। अपने मुनियों ने अध्यात्मविद्या के खजाने को परंपरा से आज-तक वहन किया है। अपने मुनिवरों के द्वारा अध्यात्मविद्या का प्रचार हुआ है और भविष्य में भी होने वाला है। अध्यात्म-विद्या का प्रचार करने वाले मुनियों को सब प्रकार का सहयोग देने की आवश्यकता है।

आत्मश्रद्धा का माहात्म्य

यदि अपन चैतन्यवाद में गहरे उतरें तो शरीर के भोग और उपभोग के साधनों की तृष्णा का त्याग कर दूसरों की भलाई में भाग ले सकते हैं। आत्मवाद की श्रद्धा होनी चाहिए। आत्मवाद और कर्मवाद की सच्ची श्रद्धा होने से सम्यक्त्व की उत्पत्ति होती है। आत्मवाद की सच्ची श्रद्धा के संस्कार देने वाले गुरुओं की शरण में रहकर आत्मविश्वास विकसित करना चाहिए, आत्मविश्वास और आत्मा की कीमत समझे बिना प्रमाणिकता और सच्चा वैराग्य प्रकट नहीं हो सकता। आत्मविद्या अपूर्व सुख की चाबी है, ऐसा दृढ़ निश्चय करने वाली प्रजा में सच्चे संन्यास के गुण प्रकट हो सकते हैं। अपना विश्वास अपने को सकारे और अपने से जो कुछ करने में आता हो उसमें अपनी श्रद्धा न हो वहां तक उस कार्य में वास्तविक सफलता नहीं मिल सकती। आत्मविद्या कार्य विजय की चाबी बताती है और कार्य करने में सच्ची श्रद्धा पैदा करती है। कार्य करने में संशयी आत्मा नहीं ठहर सकती और वह दूसरों के लिए दृष्टान्तरूप नहीं हो सकती। सच्ची आत्मश्रद्धा ही परम पुरुषार्थ का बीज है। सच्ची आत्मश्रद्धा ही मनोवृत्ति की एकाग्रता का बीज है। सच्ची आत्मश्रद्धा ही

यम और नियम का आधार है। सच्ची आत्मश्रद्धा ही धर्मानुष्ठानोरूप वनस्पतियों का रसभूत है। बिना श्रद्धा वाला मनुष्य संशययुक्त विचारों से नष्ट हो जाता है और अनेक मनुष्यों को नष्ट करता है। आत्मा को अनुभवगम्य किये बिना आनंद की छाया सब प्रसंगों में नहीं दीख सकती। सच्ची आत्मश्रद्धा रेडियम धातु के समान है। आत्मश्रद्धा बिना सेवा और भक्ति में सच्चा आत्मरस पैदा नहीं हो सकता और इससे मनुष्य सेवा-भक्ति के अनुष्ठानों में शुष्कता की वृद्धि करता है। आत्मज्ञान जितने अंश में बढ़ता जाता है उतने अंश में आत्मश्रद्धा बढ़ती जाती है। और वह अन्य गुणों को धारण करने में पृथ्वी की उपमा को धारण कर सकता है। आत्मज्ञान से आत्मश्रद्धा में परिणमित नहीं हुए मनुष्य अपना विश्वास दूसरों पर बिठाने में समर्थ नहीं हो सकते। प्रमाणिकता का सच्चा कारण आत्मश्रद्धा है। जो आत्मा को आत्मभाव से जानकर, आत्मा की श्रद्धा के रस द्वारा मन को मजबूत करते हैं उनकी कीमत नहीं आंकी जा सकती। शरीर के बजाय शरीर में रही आत्मा की श्रद्धा को विशेष मान देने की आवश्यकता है। शरीर में रहे आत्मा को पहिचानो, उस पर श्रद्धा करो, और जो जो काम करो उसमें आत्म श्रद्धा को सामने रखो, आत्मश्रद्धा से हाथ में लिए कामों में दैविक सहायता मिल सकती है यह निश्चित है। मनुष्य, अपनी आत्मा को गरीब-कंगाल समझकर अपने हाथ से अपना तिरस्कार कर आगे नहीं बढ़ सकता। अपनी आत्मा की सिद्ध समान सत्ता है; ऐसी श्रद्धा हुए बिना आत्मा की शक्तियों को व्यक्त करने के लिए उद्यम नहीं किया जा सकता। और उद्यम करने पर भी उसमें होने वाले विघ्नों के सामने टिका भी नहीं जा सकता। आत्मश्रद्धा

निराशावाला मनुष्य डराने से विघ्नों से पीछे हट जाता है; वह पक्के निश्चय पर मेरु पर्वत की तरह अडिग नहीं रह सकता। वह क्रिया या धर्मानुष्ठानों में दुःख आने पर कार्यक्षेत्र से भाग जाता है। आत्मबल को एकत्र कर उसे किसी भी कार्य में काम लेना हो तो वह बिना आत्मश्रद्धा वाला बने नहीं हो सकता। आत्मश्रद्धा ही विजय की वरमाला है। आत्मश्रद्धा वाले मनुष्य आनन्दोत्साह से धर्म कार्य करते हैं। और वे दुःख में भी कर्म-वाद के सिद्धान्तों के जानकार होने से घबराते नहीं, और मस्तिष्क का संतुलन कायम रखकर आत्मप्रदेशों में रहे धर्मों को विकसित करते हैं। आत्मवादी आत्मश्रद्धा से परिपक्व होते हैं जिससे वे कर्म के अनुसार सुख दुःख के विपाक को भोगते हुए समत्व को नहीं छोड़ते। आत्मवादी पुनर्जन्म को मानने वाले होने से सत्कार्य करने में निष्काम बुद्धि से परिपूर्ण आत्मभोग दे सकते हैं। जो भी शुभ कर्म किए जाते हैं उनका फल अवश्य परभव में मिलता है, ऐसा आत्मवादियों को विश्वास होने से शुभकार्य करने में कभी पीछे नहीं हटते। आत्मवादियों को पाताल कुए की तरह अपनी आत्मा से अनन्त शक्ति में सहायता मिल सकती है। जड़वादी-नास्तिक पुनर्जन्म को नहीं मानते है इसलिए वे इस भव में जो कुछ प्रत्यक्ष फल दिखाई देता है वही मानते हैं और परोक्ष फल के लिए अविश्वास की दृष्टि रखते हैं। इसलिए वे वास्तविक फल प्राप्त नहीं कर सकते। आत्मवादी ऐसा मान भाव धारण करके आगे बढ़ने कार्य में जड़वादियों की अपेक्षा पीछे रहते हैं तो अवश्य हि, वे आत्मतत्त्व के सच्चे स्वरूप को नहीं पहिचान सके हैं।

जड़वादियों और चैतन्यवादियों का मुकाबला

जड़वादियों की अपेक्षा सच्चे चैतन्यवादी सब बातों में विजय प्राप्त कर सकते हैं और इससे जड़वादियों को आश्चर्य होता है। जड़वादी वास्तव में सच्चे अध्यात्मवादियों के अधीन होते हैं और वे अध्यात्मवादियों के शिष्य बनते हैं। आत्मश्रद्धा से चुस्त हुए आत्मवादी सम्पूर्ण जगत् की दृष्टि में आते हैं। अध्यात्मवादी शोक वा उदासीनता से बैठे नहीं रहते। अध्यात्मवादी डरपोक मीयां की तरह धर्म मार्ग से पीछे नहीं हटते अध्यात्मवादी बाह्य और आंतरिक शक्तियों को अपनी सामर्थ्य के अनुसार विकसित करते हैं।

अपने आर्य क्षेत्र में अध्यात्मविद्या ने सदा के लिए निवास किया है। धर्म के स्थान वास्तव में आर्यावर्त में परिपक्व होते हैं। आर्य क्षेत्र की भूमि के वातावरण में कोई विचक्षण तत्त्व रहा है कि, जो आर्यावर्त के निवासियों को आत्मविद्या के प्रदेश की तरफ आकर्षित करता है और महात्माओं को अपने यहां पैदा करता है। आर्यावर्त के विद्वानों का अध्यात्म-विद्या की तरफ लक्ष खींचता है।

आत्मज्ञान से आर्यभूमि की पूज्यता

आर्यावर्त में सच्ची अध्यात्मविद्या है। आर्यदेश के मनुष्यों को अध्यात्मविद्या की प्राप्ति के लिए पाश्चात्य लोगों का शिष्य बनने की जरूरत नहीं है। आर्यदेश में जन्मे मनुष्य अध्यात्मविद्या की सच्ची प्राप्ति कर सकता है। पाश्चात्य लोग आर्य देश की आध्यात्मविद्या को ग्रहण करें तो पृथ्वी के टुकड़े के लिए लाखों मनुष्यों के प्राणों का नाश हो रहा

मोहदशा के आधीन नहीं होंगे। देश, काल और क्षेत्र, ये तीन अध्यात्मविद्या की प्राप्ति के लिए उपयोगी हैं। अध्यात्मविद्या यह अपना सच्चा जीवन है और ऐसी जिन्दगी जीना ही अपना अमरत्व समझना।

सारी दुनिया में अध्यात्मज्ञान से समानभाव का प्रचार किया जा सकता है। हरएक धर्म वाले भ्रातृभाव-मैत्री-सलाह-संप और एकता के लिए भाषण देते हैं परन्तु, अध्यात्मज्ञान के गहरे प्रदेश में प्रवेश किये बिना समानभाव की दृष्टि से जगत को नहीं देख सकते। अध्यात्मज्ञान में गहरे उतरने से समानभाव में आत्मा विकसित होती है और इससे वे स्वार्थ के लिए किसी जीव को दुःखी नहीं करते। अध्यात्मज्ञान कहता है कि, समानभाव के लिए प्रथम मुझे याद करो! मैं तुमको समभाव के किनारे पर ले जाऊँगा, वहां तुमको सारी दुनिया समान लगेगी। जिस अध्यात्मज्ञान से समानभाव विकसित होता है, उस समानभाव की दिशा में गमन कर तत्सम्बन्धी विचार करना चाहिए।

समानभाव

समानभाव यह जीवन का बड़ा रसायन है। यह दुःख को दूर करता है और सुख को दृढ़ करता है। यह वियोग को दूर करता है और विरहता का नाश करता है—कठिन से कठिन दुःख को मिटाता है और, धर्म के सुन्दर अंग का पोषण करता है। कन्फ्यूशियस धर्म के सब सिद्धान्तों का सार समानभाव है। "एक दूसरे को समान समझो, तुम्हारे आचार दूसरों और [illegible] के समान हैं [illegible] दुनिया में रहो, फिर तुम्हारा जीवन आनन्द से [illegible] होगा।"

अपने तीर्थंकरों और महात्माओं ने समानभाव की तरफ उन्नति का निश्चय बतलाया है। एक विद्वान ने किसी महात्मा को पूछा कि, अपनी उन्नति किसमें है? महात्मा ने कहा कि "समानभाव में"। समानभाव से मनुष्य सारी दुनिया में हरएक के हृदय पर जबरदस्त श्रद्धा बिठा सकता है। सब प्रकार की वासना के संकुचित प्रदेश से छूटना हो तो समानभाव से हृदय भरो। यदि तुमको भेदभाव के क्षुद्र विचारों को नाश करना हो तो समानभाव की उपासना करो! शुद्ध प्रेम सिवाय समानभाव के नहीं आ सकता। कॅनन फॉर कहते हैं कि—"हम बहुत दफा उद्योग के बजाय समानभाव से अधिक हित करते हैं। मनुष्य पदवी, अधिकार, द्रव्य और शरीरसुख प्राप्त करे, परन्तु संतोष से सुख में जीवित रहे।" एक बात ऐसी है जिसके बिना जिंदगी भार रूप हो जाती है, और वह है समानभाव। समानभाव दूसरे के हृदय में प्रीति और आज्ञाधीनता की प्रेरणा देता है।

समानभाव अधिक मनुष्यों पर दर्शा कर अधिक विस्तार होने दें तो वह 'सार्वजनिक दया भाव' ऐसा बड़ा रूप धारण करता है। समानभाव बताने के लिए अधिक धन या अधिक बुद्धिबल की कोई जरूरत नहीं है। नोकस नामक एक यूरोपियन विद्वान ने कहा है कि, "समानभाव से एक दूसरे की भलाई के लिए अधिक लालसा होती है।" एक हृदय की दूसरे के हृदय पर असर हुए बिना नहीं रहती। समानभाव से सारी दुनिया मित्र हो जाती है। जब मनुष्य दूसरे के जीवन को अपना जीवन समझता है तब दैविक असर होती है और सबको अपने प्रति आकर्षित करता है। उत्तम और उदार प्रकृति के पुरुषों में सब से अधिक समानभाव होता है। बिलकुल कोई

समानभाव के यत्न के लिए अधिक प्रसिद्ध थे । सोक्रेटीस ने कहा कि "जैसे मनुष्य की अपेक्षा स्वार्थ के लिए कम होती जाती है वैसे वह परमात्मा के निकट पहुँचता जाता है ।" समानभाव यह परमात्मा के पास पहुँचने का सर्टिफिकेट है । कई बार ऐसा होता है कि पाठकों को समानभाव पर पुस्तक पढ़ने पर असर होती है परन्तु वह उनके आचरण में नहीं दिखाई देता । दुनिया में राष्ट्रों-राष्ट्रों में भेद, एक दूसरे के बीच भेद । सेठ नौकर को हलका समझता है, राजा अपनी प्रजा को हीन समझता है, अधिकारी अपने नौकरों को हलका मानता है और प्रभु की प्रार्थना कर प्रभु की कृपा चाहने लगे । यह कितना अधिक असमानभाव ? छोटे बड़े की कल्पना से मनुष्य अपने अंदर की आत्मा को पहिचान नहीं सकता । जिन मनुष्यों में साक्षात् परमात्मा विराजमान हैं उन मनुष्यों की तरफ, द्वेष की, ईर्षा की निगाह से देखने वाले मनुष्य की आत्मा समभाव से पीड़ित दृष्टि से देखने वाली है । आचार में समानभाव जिसने धारण किया है ऐसे समानभावी की जिन्दगी अनेक मनुष्यों के कल्याण के लिए होती है । इस भारतवर्ष में सब जगह शिक्षा बढ़ने लगी है, व्यापार बढ़ने लगा है, धर्म के ग्रंथ की पत्रिकाएँ भी बहुत प्रकट होने लगे हैं; परन्तु समानभाव तो न्यून होता जा रहा है । शिक्षा प्राप्त मनुष्य बहुत मिलते हैं, परन्तु सब जीवों को समान समझकर, उनके प्रति मैत्री-भाव का प्रयोग करने वाले विरले पुरुष ही देखने में आते हैं । मस्जिदों या मंदिर में ज्ञानियों की गड़गड़ाहट बढ़ने लगी है, किन्तु समानभाव से सबके मनुष्य बन्धुओं के प्रति व्यवहार करने वाले अल्प मनुष्य ही होते हैं । मनुष्य परमात्मा की तरफ दौड़ जाते हैं, परन्तु परमात्मा की आज्ञानुसार आचरण

किए विना परमात्मा की गिनती में कैसे आ सकते हैं!
वाह्यसत्ता-लक्ष्मी और शरीर तथा जातिभेद से हरकाए हु
आत्मा को विषमभाव से देखने वाले शरीर में रही आत्मा की
उत्तमता को नहीं समझ सकते। समानभाव यह सब प्रका
की उच्चता की सीढ़ी है। समानभाव से ईर्षा आदि दोषों का
तुरंत नाश होता है। श्रीमद् कलिकाल सर्वज्ञ हेमचंद्राचार्य
में जैनधर्म में पड़े गच्छों के भेद के प्रति समानभाव होने
उन्होंने गच्छभेद के क्लेश में अपनी लेखनी का उपयोग नहीं
किया। श्री हीरविजयसूरि में भी सर्वगच्छीय साधुओं के प्रति
समानभाव बढ़ता जाता था इसलिए वे अन्य गच्छ वालों के
साथ चर्चा कर क्लेश उत्पन्न नहीं करने का ठहराव करने में
समर्थ हुए। अकबर बादशाह भी समानभाव के कारण हिंदुओं
और मुसलमानों का प्रेम जीत सके और इतिहास में उन
नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा गया। हर स्थिति में मनुष्य समान
भाव से आत्मिक सुख की प्राप्ति करता है। समानभाव के मा
पर जाने से आत्मसुख का प्रकाश होता है। समानभाव के मु
में सारी दुनिया के सत्यधर्म का प्रकाश रहा है। जो मनु
समानभाव को व्यवहार में लाता है, वह महात्मा होता है
समानभाव के बहुत लेख देखने में आते हैं, परन्तु उसे आच
करनेवाले मनुष्य बहुत कम देखने में आते हैं। अपना मा
कायम रखने में जहां बड़प्पन हो और अन्य मनुष्य हलके दीख
हों वहां समानभाव का तिरस्कार है, और यह तिरस्कार
दोष सारी दुनिया पर बुरी असर करता है।

समानभाव से दया-शुद्ध प्रेम आदि गुण उच्चभाव में
विकसित होते हैं और क्षुद्र जंतु भी अपने साथ हिलमिल कर

आस-पास कूदता; वह पनीर का टुकड़ा लेता तब चूहा
और उसके हाथ में वह उसे खाता रहता और फिर
की तरह अपना मुंह और पंजा साफ करता और चला
(कर्तव्य पुस्तक)।

स्वामी रामतीर्थ हिमालय पर्वत की गुफाओं में रहते
बाघ, सिंह आदि हिंसक प्राणी भी उनको कष्ट नहीं पहुंच
(रामतीर्थ चरित्र)

पशु और पक्षियों पर समानभाव का बहुत असर होता
तो मनुष्यों पर समानभाव की खूब असर हो इसमें
आश्चर्य ? परस्पर ऊँच नीच का भेद मानकर समानभाव
दशा प्राप्त नहीं की जा सकती। समानभाव से सारी दुनि
के मनुष्यों के प्रति एक समान आत्मभावना जागृत हो
और इससे आत्मा, स्थूल भूमिका में भी सारी दुनिया का
बनने का अधिकार प्राप्त कर सकता है। अपनी
विद्यादेवी का सत्कार कर उसे मन मन्दिर में बिठाओ
उसकी आज्ञा के अनुसार संसार के समस्त प्राणियों में
भाव रखो, फिर देखो कि पूर्व की तुम्हारी जिंदगी की
वर्तमान जिंदगी कितनी अधिक उत्तम है।

इतना तो कहे बिना नहीं चलता कि, आर्यों की
आर्यावर्त की उन्नति के लिए अध्यात्मज्ञान की बहुत जरूरत
अध्यात्मज्ञान बिना समानभाव की भूमिका दृढ़ नहीं होती
अध्यात्मज्ञान से बहुत से कृत्रिम भेदों के कदाग्रह नष्ट हो
हैं और अपनी जिंदगी अमृत समान लगती है। अनेक
उत्तम संस्कार से अध्यात्मज्ञान के प्रति रुचि होती है
उसकी प्राप्ति होती है। एक बार अपने हृदय में अध्यात्म

वनता है। अध्यात्मज्ञान यह श्री वीरप्रभु की दी हुई सुख प्रसाद है। दुनिया के मनुष्यो! तुम जरा इस दिव्य वस्तु की तरफ दृष्टि कर उसका आस्वादन करो! पश्चात् उसके गुण सम्बंधी बात तुम्हारा हृदय तुमको सत्य बात कहेगा।

अज्ञानी, इंद्रियों और शरीर के धर्मों में एक होकर रहता है इससे शरीर की चंचलता से अपनी चंचलता करता है। ज्ञानी की आत्मा सूखे नारियल की तरह है जिससे शरीर के धर्म में ममता, आशक्ति और वासनाओं से परिणाम नहीं पाता। ज्ञानी की आत्मा अपने धर्म में मन, वचन और काया का वीर्य परिणमाता है और शरीर के धर्मों में निर्लेप रहकर अंतर से निश्चल रहता है। मरे मनुष्य के मुर्दे को कोई हार पहिनावे, कोई पूजे, कोई लात मारे और कोई आग रखे तो उसे कुछ नहीं होता, वैसे ज्ञानी, मन, वाणी और काया को अपने से भिन्न मानकर उनके धर्म में समभाव से रहता है और शरीर के धर्मों से हर्ष शोक नहीं करता। ज्ञानी ऐसी उत्तम दशा का अनुभव कर मन, वाणी और काया की चंचलता के क्षोभ को अपने मन में नहीं मानता, इससे वह निश्चलता के शिखर पर जा पहुँचता है। ज्ञानी को अपनी आत्मा को ध्यान के ताप से सूखे नारियल की तरह बनाने का प्रयत्न करना, कि जिससे मन, वाणी और काया के धर्मों की असर अपने पर नहीं हो और अध्यात्म में आगे का मार्ग प्रकाशवान हो। श्रीमद् हेमचंद्राचार्य अध्यात्मज्ञानियों को लय समाधि का उत्तम मार्ग बताते हैं।

यावत् प्रयत्नलेशो यावत् संकल्पकल्पना कापि।
तावन्न लयस्यापिप्राप्तिस्तत्वस्य का तु कथा॥
(योग शास्त्र)

जहां तक प्रयत्न का प्रश्न है और जहां तक संकल्प की कुछ भी कल्पना है वहां तक लय की प्राप्ति नहीं होती तो तत्त्व की क्या बात करना ? एक ही वस्तु में एका-चित्त को लगाने में चित्त का लय होता है। आत्मा के गुणों में विचरण करने और आत्मा के शुद्ध उपयोग में स्थिर होने से लय की प्राप्ति होती है। आत्मा को आत्मरूप में देखते रहो और किसी प्रकार का संकल्प मन में न आने दो इस तरह एक घंटा करने से लयप्राप्ति की दिशा की जानकारी अपने आप होगी और अंतिम संतोष के अनुभव की झांकी अपने आप मालूम होगी, मन में संकल्प विकल्प का मद हो जाय ऐसी उमर भी आती है। शरीर, मन, वाणी और यह सारा जगत् इन सब में से चित्त उठ जाय, और एक आत्मा में स्थिरता हो तो लयप्राप्ति के प्रदेश में प्रवेश होगा—चित्तलय के स्थूल और सूक्ष्म अनेक उपाय हैं, उनका वर्णन किया जाय तो एक बड़ी पुस्तक बन जाय इसलिए विशेष जिज्ञासुओं को गुरु के पास से जान कर चित्तलय के उपायों में प्रवृत्त होना। मन में सारा जगत् एक समान वस्तुस्वभाव से दीखता है, (अवलोकन करना या विषयों पर दृष्टि करना ऐसा उदासीभाव ग्रहण नहीं करना; यदि तो हर्ष, शोक, भय, लोभ, आदि से परिणति बिना वस्तु की वस्तुता से देख कर माध्यस्थभाव में रहने की प्रकृति को औदासीन्यवृत्ति समझना) औदासीन्यवृत्ति में आत्मतत्त्व का प्रकाश होता है ऐसा श्रीमद् हेमचन्द्र प्रभु बताते हैं।

यदिदं तदिति न वक्तुं साक्षाद् गुरुणापि हन्त शक्येत।
औदासीन्यपरस्य प्रकाशते तत् स्वयं तत्त्वम्॥

(योगशास्त्र)

जो परमतत्त्व है वह यह है, वा वह है, वा ऐसा है, वा वैसा है, वा ऐसा है, खेद की बात है कि ऐसा साक्षात गुरु से भी नहीं कहा जा सकता। औदासीन्यभाव में तत्पर रहे योगी को इस परमतत्त्व का अपने आप प्रकाश होता है। जो वाणी से अगोचर है उसे, गुरु ऐसा है और यह ऐसा है, इस तरह शब्दों में किस तरह बता सकते हैं? और उसका किस तरह उपदेश मात्र से हृदय में निश्चय हो? जिसे चोट लगी हो वही जानता है दूसरा उसके दुःख को कैसे जान सकता है? औदासीन्यभाव और अनुभव ये दो आत्मा के पास रहते हैं। अपनी आत्मा में औदासीन्यभाव लाने से अपने को आत्मतत्त्व का अनुभव-प्रकाश होता है। अनुभव को वाणी से नहीं कहा जा सकता। कहा है कि—

वीररसनो तो अनुभव जाणे-मर्दजनोकी छाती।

पतिव्रतापतिमनकुं जाणे-कुलटा लातो खाती।
भया अनुभव रंग मजीठा रे, उसकी बात न वचने याती॥

गर्भमांहि तो बोलताने-बहिर जनम तब मूंगे,
मूंगे खाया गोल उसकी, बात कबु न करुंगे, ॥ भया॥

अनुभव एवो अटपटो ते, वचने नहि कहेवातो,
वाग्यां भालडीयां ते जाणे, अनुभव ज्ञानी पातो, (स्वगत)

आत्मतत्त्वप्रकाश को प्राप्त करने का उपाय उपरोक्त रीति से बताकर श्रीमद् हेमचंद्र प्रभु उन्मनी भाव से आत्मतत्त्व का प्रकाश बताते हैं।

एकान्तेऽति पवित्रे रम्ये देशे सदा सुखासीनः।
आचरणाग्रशिखाग्रादशिथिलीभूताखिलावयवः॥ २२॥

जायगा, मन तो बंदर जैसा है; चाहे जितना विषयों की ओर जावे फिर भी वह कभी शांत नहीं होता, इसलिए मन को विषयों के प्रति दौड़ने से रोकना, ऐसा हमारा अभिप्राय है। श्रीमद् हेमचंद्र प्रभु के श्लोक का अर्थ उन्मनीभाव साधक जीवों को अमुक अधिकार से ही उपयोगी हो! या अन्य हो! यह भाव तो श्रीमद् के हृदय में रहा; परन्तु हमें यहां इतना ही कहना है कि, बालजीवों को ऊपर के श्लोक कच्चे पारे जैसे हो सकते हैं; इसलिए अन्य शास्त्रों में कहा है कि, "अपात्र श्रोताओं को अध्यात्मज्ञान नहीं देना"।

उन्मनीदशावाले ज्ञानियों की आत्मदशा उच्च प्रकार की होती है जिससे उनके लिए जो कुछ भी लिखा गया हो वह सब गुरुगम से समझने जैसा है, क्योंकि गुरुगम बिना सम्यग्ज्ञान नहीं हो सकता। आत्मा की उच्च दशा प्राप्त करने के लिए औदासीन्यभाव का बारंबार सेवन करना चाहिए। औदासीन्य भाव से आत्मा अपने स्वरूप में परिणमती है और अपनी आत्मा का प्रकाश स्वयं आत्मा देख सकती है। औदासीन्यभाव में इस काल में हमेशा रहना यह सम्भव नहीं; फिर भी औदासीन्यभाव का अवलंबन लेने का प्रयत्न किया जाय तो अंत में उस दिशा में गमन किया जा सकता है। आत्मा के धर्म का सत्यज्ञान और श्रद्धा होने से परमात्म परिणमन बनता है और स्वधर्म परिणमन होता है। उन्मन-ज्ञानियों को मन को स्थिर करने का प्रयत्न करना चाहिए। आनन्दघनजी कहते हैं कि—जब लग आवै नांहि मन ठाम, तब लग कष्ट क्रिया सवि फुली; ज्यूं गगने चित्राम॥ जब लग॥ मन को स्थिर करने के लिए श्री हेमचंद्र प्रभु ने भिन्न उपाय बताये हैं।

करने में क्या बाकी रहा ? अर्थात् चौरासी लाख जीव योनियां में कूदा-कूद करने में बाकी रहीं रखता **"मन एव मनुष्याणां कारण बन्धमोक्षयोः ॥ यत्रैवालिङ्गिता कान्ता तत्रैवालिङ्गिता सुता ।"** श्रीमद् मुनि सुन्दरसूरि महाराज स्वरचित अध्यात्म कल्पद्रुम के चित्तदमनाधिकार में संसार भ्रमण का मूल हेतु मन है, ऐसा बताते हुए लिखते हैं कि—

सुखाय दुःखाय च नैव देवा न चापि कालः सुहृदोऽरयो वा ।
भवेत्परं मानसमेव जन्तो संसारचक्रभ्रमणैकहेतुः ॥४॥
(अ. कल्पद्रुम).

आत्मा को सुख दुःख देने के लिए साक्षात् देवता भी समर्थ नहीं हैं। काल भी जीव को सुख दुख देने में समर्थ नहीं है, तथा मित्र और शत्रु भी सुख दुख देने में समर्थ नहीं है, परन्तु प्राणि को संसार चक्र में परिभ्रमण कराने का मूल हेतु मन ही है। मन से प्राणि को सुख दुख होता है। **मन के वश में हुआ आत्मा ही स्वयं स्वर्ग और नरक है।** रागद्वेषात्मक मन के संकल्प और विकल्प पर कर्मबंधन का आधार है। मनोनिग्रह हुआ हो तो सब सिद्ध हुआ; ऐसा बताते हुए श्री मुनि सुन्दरसूरि कहते हैं कि—

वशं मनो यस्य समाहितं स्यात् किं तस्य कार्यं नियमैर्यमैश्च ।
हतं मनो यस्य च दुर्विकल्पैः किं तस्य कार्यं नियमैर्यमैश्च ॥५॥
(अ. कल्पद्रुम.)

जैसे मन समाधिवंत होकर अपने वश में रहता है, उसे फिर यम नियम से क्या ? वैसे ही जिनका मन दुर्विकल्पों वाला है उसे भी यमनियम से क्या ? **यमनियम द्वारा मन को वश में करना जरूरी है।** मन में राग द्वेष के विकल्प संकल्प हों तो

जाप करने से मोक्ष नहीं मिलता, और दो प्रकार के तप करने से तथा संयम, दम-मौन धारण अथवा पवनादि की साधना भी मोक्ष देने में समर्थ नहीं है; किन्तु अच्छी तरह दमित ऐसा अकेला मन ही मोक्ष देने में समर्थ है।

मन को शुद्ध करने से मोक्ष मिलता है। तप करने वालों के आधीन यदि मन न हो तो तप से वे मोक्ष प्राप्त करने में शक्तिमान नहीं होते। जाप जपने वाले मनुष्यों के मन में क्रोध, मान, माया, लोभ, तृष्णा, ईर्ष्या आदि हैं तो उस जाप से किस तरह मुक्ति मिल सकती है? अर्थात् मुक्ति नहीं मिल सकती, मन में उत्पन्न होने वाली और रही हुई सब प्रकार की वासनायें ही संसार के बंधन हेतु हैं। मन में रही सब प्रकार की वासनाओं के दूर होने पर मोक्ष मिलता है। मन को वश में करने से मुक्तावस्था अपने हाथ में आती है। मन में उत्पन्न हुई सब वासनाओं से मेरेपन की भावना निकाल दो और उन्हें कहो कि तुम मेरे से भिन्न हो, तुम्हारा और मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है—इस तरह तुम वासनाओं के प्रति करोगे तो वासनाओं की ताकत कम होगी और वे मृत हो जायेंगी। हम ही वासनाओं को पैदा करते हैं और उनका नाश भी हम अपने आत्मबल से कर सकते हैं। मन में जो अशुद्ध विचार उत्पन्न होते हैं उन्हें हटाने को आत्म-प्रदेश में महायुद्ध आरम्भ करना पड़ता है, और उसमें अपनी शक्ति के अनुसार विजय प्राप्त होती जाती है। मनोनिग्रह करने से चारों गति में अवतार लेने की परम्परा दूर होती है इसलिए मन को वश में करने की अत्यन्त आवश्यकता है। श्री मुनि सुन्दरसूरि महाराज मनो-निग्रह से मोक्ष निम्न प्रकार बताते हैं।

का, सत्य सुखानुभव किया है इसीसे वे हृदय के सच्चे भाव को खुले शब्दों में जगत् के सामने निम्न प्रकार रखते हैं।

मोक्षोऽस्तु मास्तु यदि वा परमानंदस्तु वेद्यते स खलु।
यस्मिन्निखिलसुखानि प्रतिभासन्ते न किञ्चिदिव ॥५१॥

(योगशास्त्र)

मोक्ष हो या न हो (चाहे जब मोक्ष हो) परन्तु ध्यान द्वारा मोक्ष का परमानन्द तो वास्तव में हम यहां भोगते हैं। जिस परमानन्द के सामने दुनिया के सब सुख तो कुछ भी नहीं हैं ऐसा मालूम होता है। श्री हेमचंद्र ने अपने हृदय का वास्तविक रस इस श्लोक में भर दिया है। दुनिया के पंचेंद्रिय विषयसुख और आत्मिक सुख की तुलना इस श्लोक में की गई है। दुनिया के सुख के उस पार रहा ऐसे आत्मा के नित्यसुख का जिसे अनुभव हो वही ऐसे उद्गार निकालने में समर्थ होता है। मोक्ष के परमानन्द का स्वाद तो हमें आता है, ऐसा श्रीमद् मुक्त-कंठ से कहते हैं। मोक्ष के परमानन्द का स्वाद आता है यह तो निश्चय है और उसे कहने वाले कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्र प्रभु हैं। उनकी आत्मा मोक्ष के परमानन्द का अमुकदशा में भोक्ता हुआ है। उनके जैसे महापुरुष मोक्ष का परमानन्द वास्तव में उन्मनीभाव और लयावस्था से भोगे इसमें कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि अध्यात्म और योग शास्त्रों द्वारा आत्मा में गहरे उतरे महात्मा, दुनिया के सुख को तृणवत् समझकर आत्मा के सुख में सदा मस्त रहते हैं। अमृत के स्वाद के बाद कौन छाछ पीने की इच्छा करेगा ? उसी तरह लयावस्था से मोक्ष का परमानन्द वास्तव में शरीर से जीवित होते हुए जो महात्मा भोगते हैं वे महात्मा दुनिया के क्षणिक सुख से दूर रहें और उनके लिए उनकी प्रवृत्ति न हो, इसमें कुछ भी आश्चर्य

उपदेश देते हुए भी निम्न प्रकार अपने मनमित्र को शिक्षा देते हैं।

मधु न मधुरं नैता: शीतास्त्विषस्तु हिमद्युते-
रमृतममृतं नामैवास्या: फले तु मुधा सुधा।
तदलममुना संरंभेण प्रसीद सखे मनः
फलमविकलं त्वय्येवैतत् प्रसीदमुपेयुष: ।।५२।। (योगशास्त्र)

इस लयावस्था द्वारा होने वाले परमानंद के सामने मधु मधुर नहीं है, चंद्रमा की कांति शीतल कांति नहीं है, अमृत नाम मात्र के लिए अमृत है और सुधा तो व्यर्थ है, इसलिए हे मनमित्र ! इस दुनिया के प्रयास से मैं अब ऊब गया, मेरे पर तू प्रसन्न हो, क्योंकि लयावस्था द्वारा निर्दोष सहज सुख रूप फल प्राप्त करना वह तेरे प्रसन्न होने पर ही मिल सकता है। **मन से अनेक-प्रकार के दोष निकल जाना और मन का आत्माभिमुख होना, यही मन की प्रसन्नता है।** आत्मा के गुणों में मन लीन हुए बिना आत्मा का परमानंद प्रकट नहीं होता, इसलिए श्रीमद् ने मन को प्रसन्न करने के लिए उपरोक्त बात कही है। श्री हेमचंद्र महाराज कहते हैं कि श्री सद्गुरु की मन, वाणी और काया द्वारा उनकी छाया की तरह बनकर उपासना किए बिना परमानंद की प्राप्ति नहीं होती। जैन **शास्त्रों में पंच महाव्रतधारी साधु ही गुरु समझे जाते हैं,** इससे यहां साधुओं को समझना। वर्तमान काल में इक्कीस हजार वर्ष पर्यंत साधुरूप गुरुओं का अस्तित्व रहेगा। साधु संसार से मुक्त होकर मोक्ष मार्ग की आराधना कर सकते हैं, इसलिए जैन शासन में वे गुरुपद के अधिकारी माने गये हैं। परमानंद-प्रद गुरु महाराज की उपासना किये बिना परमानंद प्राप्त नहीं

उपदेश देते हुए भी निम्न प्रकार अपने मनमित्र को शिक्षा देते हैं।

> **मधु न मधुरं नैता: शीतास्त्विषस्तु हिमद्युते-**
> **रमृतममृतं नामैवास्या: फले तु मुधा सुधा।**
> **तदलममुना संरंभेण प्रसीद सखे मनः**
> **फलमविकलं त्वय्येवैतत् प्रसीदमुपेयुष: ॥५२॥ (योगशास्त्र)**

इस लयावस्था द्वारा होने वाले परमानंद के सामने मधु मधुर नहीं है, चंद्रमा की कांति शीतल कांति नहीं है, अमृत नाम मात्र के लिए अमृत है और सुधा तो व्यर्थ है, इसलिए हे मनमित्र ! इस दुनिया के प्रयास से मैं अब ऊब गया. मेरे पर तू प्रसन्न हो. क्योंकि लयावस्था द्वारा निर्दोष सहज सुख रूप फल प्राप्त करना वह तेरे प्रसन्न होने पर ही मिल सकता है। **मन से अनेक-प्रकार के दोष निकल जाना और मन का आत्माभिमुख होना, यही मन की प्रसन्नता है।** आत्मा के गुणों में मन लीन हुए बिना आत्मा का परमानंद प्रकट नहीं होता, इसलिए श्रीमद ने मन को प्रसन्न करने के लिए उपरोक्त बात कही है। श्री हेमचंद्र महाराज कहते हैं कि श्री सद्गुरु की मन, वाणी और काया द्वारा उनकी छाया की तरह बनकर उपासना किए बिना परमानंद की प्राप्ति नहीं होती। जैन शास्त्रों में पंच महाव्रतधारी साधु ही गुरु समझे जाते हैं, इससे यहां साधुओं को समझना। वर्तमान काल में इक्कीस हजार वर्ष पर्यंत साधुरूप गुरुओं का अस्तित्व रहेगा। साधु संसार से मुक्त होकर मोक्ष मार्ग की आराधना कर सकते हैं, इसलिए जैन शासन में वे गुरुपद के अधिकारी माने गये हैं। परमानंद-प्रद गुरु महाराज की उपासना किये बिना परमानंद प्राप्त नहीं

प्राप्ति के लिए सद्गुरु की उपासना आवश्यक है। सद्गुरु की उपासना से शास्त्रों का ज्ञान होता है। अनेक प्रकार के अनुभव होते हैं। गुरुकुलवास से परंपरा से चली आई अनेक बातों के अनुभव की प्राप्ति होती है। पूर्वकाल में सूरिमंत्र और वर्धमान विद्या आदि गुरु की कृपा से शिष्य प्राप्त करते थे, तब वे तेजस्वी होते थे। श्री हेमचंद्र अपने गुरु की कृपा से महासमर्थ हुए थे। गुरु की कृपा और आशीर्वाद से अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति होती है इसमें जरा भी संदेह नहीं है। गुरु की कृपा से श्री यशोविजयजी उपाध्याय भी बड़े प्रभाविक हुए हैं। गुरु की कृपा से अनेक शिष्यों को उच्च पद की प्राप्ति हुई है। गुरु की सेवा-भक्ति और वैयावच्च से जो कुछ प्राप्त होता है वह हमेशा के लिए कायम रहता है। उन्मनीभाव की प्राप्ति तो कभी भी गुरु की कृपा और आशीर्वाद के नहीं होती। गुरु के नाभि के उछाले से दी गई आशीष से उन्मनीभाव के प्रकाश को प्राप्त करने के लिए शिष्य भाग्यशाली होना है। उन्मनीभाव या लयसमाधि यह एक ही है; यह पुस्तकें पढ़ने मात्र से प्राप्त नहीं हो सकती। नागार्जुन जैसे को भी गुरुगम बिना आकाश में उड़ने की शक्ति प्राप्त नहीं हुई। जब गुरु की कृपा प्राप्त की फिर उन्हें आकाशगमन की सिद्धि मिली। चाहे जैसा ज्ञानी हो तब भी उसे उन्मनीभाव की प्राप्ति के लिए—छोटे बालक की तरह गुरु की उपासना में तत्पर होना चाहिए। अध्यात्मज्ञान में गहरे उतरे श्रीमद् हेमचंद्र प्रभु की हितशिक्षा को भूलना ठीक नहीं। अध्यात्मज्ञान और योगज्ञान के लिए उनका जितना उपकार माना जाय उतना कम है। अध्यात्म का साध्य बिंदु सहजानन्दानुभव है; उसका मार्ग वास्तव में श्री हेमचंद्र प्रभु ने बताया है। इस विषय पर श्री यशोविजयजी उपाध्याय ने

बताते हैं। अध्यात्मज्ञान से जो तप किया जाता है उससे आत्मशुद्धि निम्न प्रकार बताते हैं।

अज्ञानी तपसा जन्म-कोटिभिः कर्मयन्नयत्।
अन्तं ज्ञानतपोयुक्तस्तत्क्षणेनैव संहरेत् ॥१६१॥

ज्ञानयोगस्तपःशुद्धमित्याहुर्मुनिपुङ्गवा।
तस्मान्निकाचितस्यापि कर्मणो युज्यते क्षयः ॥१६२॥

(अध्यात्मसार)

अज्ञानी, करोड़ों जन्म द्वारा-तप से जो कर्म क्षय करता है, उस कर्म को ज्ञान-तपयुक्त ज्ञानी एक क्षण में दूर करता है, इसलिए ज्ञानयोग तप शुद्ध है; क्योंकि **ज्ञानयोग तप से निकाचित कर्मों का क्षय होता है।** अध्यात्मज्ञान पूर्वक तप करने की महत्ता जो बताई गई है वह मनन करने योग्य है। अध्यात्मज्ञान विना अज्ञानियों के कर्म चित्त की शुद्धि करने में समर्थ नहीं होते, वह निम्न प्रकार बताते हैं।

अज्ञानिनां तु यत्कर्म न ततश्चित्तशोधनम्।
योगादेस्तथाभावाद् म्लेच्छादिकृतकर्मवत् ॥२८॥

(अध्यात्मसार)

अज्ञानियों के जो कर्म हैं उनसे चित्त की शुद्धि नहीं होती, क्योंकि म्लेच्छादियों के किए कर्म की तरह, ज्ञान योगादि का सद्भाव उनमें नहीं होता है। ज्ञानगर्भित वैराग्य से अध्यात्मज्ञान की स्थिरता होती है। अध्यात्मज्ञानी क्रियानुष्ठानों द्वारा कर्मों का नाश करते हैं। दुःखगर्भित और मोहगर्भित वैराग्य से अनंतगुणा उत्तम ऐसा ज्ञानगर्भित वैराग्य प्राप्त करना चाहिए। ज्ञानगर्भित वैराग्य से अध्यात्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। ज्ञानगर्भित वैरागी को कदाग्रह नहीं होता।

मार्ग ढूंढ़ने में आवे तो कभी, असली शांति का मार्ग प्राप्त नहीं हो सकता। अपनी आत्मा को पहिचानो, आत्मा की ओर लक्ष रखो, अपनी आत्मा क्या कहती है वह सुनो. अपनी आत्मा कैसी है उस बारे में बहुत गहरे उतर कर विचार करो गुरुगम लेकर अपनी आत्मा की वास्तविक शांति का रस चखो, पश्चात् तुम अध्यात्मज्ञान की बारंबार स्तुति करोगे। मोह के जोर से और अज्ञान से जो जानते हो उसमें भूल करते हो और अंधकार में प्रवेश करते हो, परन्तु मोह की प्रवृत्तियों को हटाकर जरा अध्यात्म के प्रकाश में आओ; इससे सत्य का अपने आप निर्णय कर सकोगे। मनुष्य सुख के स्वरूप को समझे बिना प्रवृत्ति मार्ग के राही बनकर एंजिन की तरह रात-दिन-मन, वाणी और काया को संतप्त कर दुःख खड़ा करता हैं। जिसे सुख मिलता है. जिसमें सुख प्रकट होता है जिसके द्वारा सुख प्रकट होता है, उसका पूरी तरह विचार नहीं करना और गाडरिया प्रवाह की तरह बाह्य पदार्थों की प्राप्ति में गद्धावैतरू कर कर सुख प्राप्त करना है, और सुख मिलता नहीं फिर भी उसीमें सुख के लिए दौड़ता है; ऐसा करने से असली शांति, वास्तविक आनंद, कहां से मिले ? चारों खण्ड के मनुष्यों की तरफ दृष्टि डालो; धनवान और गरीब पर दृष्टि डालो; हमेशा कौन वास्तविक रूप में सुखी है इसका विचार करो। "जैसा पिंडे वैसा ब्रह्मांडे" जैसे तुमको बाह्य में क्षणिक सुख मिलता है वैसा सारी दुनिया के जीवों को बाह्य पदार्थों में क्षणिक सुख मिलता है, ऐसा निश्चय रूप से मानना। तुम्हारे सहज सुख में विघ्न करने वाले मोह और अज्ञान हैं। मोह और अज्ञान जहां तक हैं वहां तक नित्य सुख प्राप्ति में वे विघ्न डाले बिना रहेंगे नहीं, ऐसा निश्चित मानकर अज्ञान मोह आदि

मन, वाणी और काया का बल विकसित कर उसके द्वारा मोक्ष की आराधना करना यह योग का मूल भाव है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए योगबल की आवश्यकता स्वीकार की गई है। वज्रऋषभनाराच संघयण बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती; उसमें भी मुख्यतः योग की महिमा समझना। हठयोग, मंत्रयोग, भक्तियोग, और लययोग आदि योग के बहुत भेद हैं, उनका विशेष वर्णन अस्मदीय योगदीपक नामक ग्रंथ में पढ़ना। हठयोग के सम्बन्ध में श्रीमद् हेमचन्द्रसूरि, श्री जिनदत्तसूरि, आचार्यों ने बहुतसा विवेचन किया है। जैनों में हठयोग की प्रक्रिया भी पूर्व से चली आई है। उपधान की क्रियाएं और योगोद्वहन की क्रियाओं में तथा प्रतिष्ठा आदि की क्रियाओं में हठयोग की बहुत सी क्रियाएं अलग अलग रूप में दिखाई देती हैं। हठयोग की क्रियाओं को पूर्व के आचार्य साधते थे। सं० १७३७ की साल में विद्यमान और महासमर्थ विद्वान हेमलघुक्रिया, कल्पसूत्र सुबोधिका टीका और लोकप्रकाश आदि अनेक ग्रंथ के कर्त्ता श्री विनयविजयजी उपाध्याय भी हठयोग सम्बंधी गहरा ज्ञान रखते थे ऐसा निश्चित है, वे निम्न प्रकार हठयोग सम्बंधी पद का गान करते हैं।

पद पच्चीसवां (राग आशावरी)

साधु भाई सो है जैन का रागी,
जाकी सुरत मूल धुन लागी ॥ साधु ॥टेक॥

सो साधु अष्ट करमसुं झगड़े, शून बांधे धर्मशाला;
सोऽहं शब्दका धागा सांधे, जपे अजपा माला ॥साधु॥१॥

गंगा यमुना मध्य सरस्वती, अधर बहे जल धारा;
करीय स्नान मगन हुइ बैठे, तोड्या कर्मदल भारा ॥साधु॥२॥

कोई आत्मा की स्थिरता के लिए नहीं होता। अजपाजाप के साथ सुरता का सम्बंध रखा जाय तो तीन चार माह में योगी, मन की दशा को बदल डालता है और दिव्य प्रदेश में अपने मन को ले जाता है, तथा अनेक विकल्प संकल्पों को रोकने में समर्थ होता है। अजपाजाप से साधुयोगी शांति प्राप्त करता है और मन को अपने वश में रखने में समर्थ होता है, तथा संकल्प की सिद्धि सन्मुख गमन करता है। साधुयोगी अजपा-जाप की इस तरह जपमाला गिने और दूसरा क्या करे वह बताते हैं। बांई नासिका को गंगा कहते हैं और दाहिनी नासिका को यमुना कहते हैं। इड़ा और पिंगला ये दो नासिकाएं साथ चलती हैं उसे सुषुम्णा कहते हैं और योग की परिभाषा में उसे सरस्वती कहते हैं। इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा के ऊपर जलधारा बहती है। कोई उसे अमृतधारा कहते हैं। खेचरी मुद्रा करने वाला अमृत बिंदुओं को ग्रहण करता है। बांई और दाहिनी नासिका का वायु तथा सुषुम्णा का रोध होने पर साधुयोगी ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करता है, अर्थात् वह परमात्मज्ञान में प्रवेश करता है। और वहां समतारूप अमृत-धारा में स्नान कर मग्न होता है। वास्तव में ब्रह्मरन्ध्र में स्थिरता होने पर आनन्दामृतधारा का अनुभव होता है। आत्मबंधुओ! आत्मा के शुद्ध गुणों में से एक गुण में लीन हो जाओ! अर्थात् अपनी आत्मा के असंख्य प्रदेश वास्तव में ब्रह्मरन्ध्र में हैं, वही आत्मा में हूं, ऐसे उपयोग में घंटों तक स्थिर हो लीन हो जाओ! यानी ""अधर बहे जलधारा" इसका अनुभव तुम स्वयं कर सकोगे। इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा नाड़ी में प्राणवायु का रोध होता है और ब्रह्मरन्ध्र में समाधि लगती है तब, अमृतधारा का अनुभव होता है।

हठसमाधि अमुक अपेक्षा से अंतिमदशा का साध्यबिंदु स्थिरता-लीनता होने पर कही जाती है। क्षयोपशमभाव सदाकाल एकसा नहीं रहता। क्षयोपशमभाव की समाधि के लिए भी ऐसा ही समझना। हठसमाधि के साथ क्षयोपशमभाव की समाधि का सम्बंध रहता है, क्योंकि कारण के बिना कार्य नहीं होता, द्रव्य के बिना भाव नहीं होता। प्राणवायु की स्थिरता के साथ क्षयोपशमभाव की समाधि का भी ब्रह्मरन्ध्र में आविर्भाव होता है। ब्रह्मरन्ध्र में सुरता से स्थिरता करने से थोड़े दिनों में समाधि की झांकी होती है। मन की जब रागद्वेष के विकल्प संकल्प रहित सच्ची लय होती है वहां समाधिभाव प्रकट होता है। क्षयोपशमभाव की समाधि का आधार वास्तव में कारण सामग्री पर है। **शरीर स्वास्थ्य, मनः स्वास्थ्य, योग्य आहार, योग्य विहार, योग्य स्थल आदि कारणसामग्री से समाधि की प्राप्ति होती है।** समाधिकाल की उत्थान दशा में जगत् के साथ सम्बंध रहता है और समाधिकाल में तो ध्येय बिना अन्य वस्तुओं के साथ उपयोग भाव से सम्बंध प्रायः नहीं रहता; हठयोग के साथ राजयोग की समाधि का क्षयोपशमभाव में सम्बंध होता है ऐसा हमको आभास होता है। समाधिकाल में पंचभूत से अपना आत्मा छूटा होता है ऐसा भिन्न बोध होता है। ऐसे भेदज्ञान से आत्मा की श्रद्धा प्रकट होती है और आत्मा की श्रद्धा प्रकट होने से आत्मा के गुण प्राप्त करने की सच्ची लगन पैदा होती है और पश्चात् यह चोलमजीठ का लगा रंग कभी नहीं छूटता। ऐसी दशा में रहनेवाला साधु अपने गुणों की स्मरणा में लय लगाता है और शरीर में रहते हुए, शरीर-वाणी और मन में परिणमता, आत्मा में अपने शुद्ध धर्म से परिणाम प्राप्त करता है। ऐसी परमानन्ददशा में

अपेक्षा ग्रहण नहीं की जावे और सिर्फ द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा ग्रहण करी जावे तो आत्मा अचल है। हरएक वस्तु मूल द्रव्य रूप में अचल है और पर्याय की अपेक्षा चल है। "आत्मा द्रव्यरूप से अचल नहीं मानी जावे तो वह ध्रुव नहीं ठहरती, और ध्रुव के बिना आत्मा सत् नहीं ठहर सकती" इस तरह उपनिषद् का अनेकांत दृष्टि से अर्थ ग्रहण किया जाय तो आत्मा में चलत्व और अचलत्व सिद्ध होता है। एकान्तवाद से वेदांती भी इसका अर्थ सम्यग्दृष्टि बिना बराबर नहीं कर सकते। सम्यग्दृष्टि से अनेकान्तार्थ ग्रहण करने वाली वस्तु को सम्यग् जान सकता है। जो मनुष्य सब प्राणियों को अपनी आत्मा में देखता है और सब प्राणियों में अपनी आत्मा को देखता है वह ज्ञानी है और वह किसी का तिरस्कार नहीं कर सकता; ऐसा आत्मज्ञानी मुक्त होता है। सब प्राणियों को अपनी आत्मा के समान समझने वाला ज्ञानी, सब प्राणियों में अपनी आत्मा को देखता है ऐसा समझना, तथा जो अपनी आत्मा के समान सब प्राणियों को देखता है वह किसी भी प्राणी का तिरस्कार करने को प्रेरित नहीं होता और वह किसी प्राणी से तिरस्कृत नहीं होता। सब प्राणियों में भिन्न भिन्न आत्मा है। जैसे जैसे अपनी आत्मा को दुःख दुःख होता है वैसे अन्य प्राणियों की आत्मा को भी दुःख दुःख होता है, ऐसा अध्यात्मज्ञान से जानने में आता है तब, सब प्राणियों पर दया की जा सकती है; —सब जीवों की यतना की जा सकती है। ऐसी उत्तम दशा प्रकट होने पर अपना अशुभ चिन्तन करने वाले पर भी वैरभाव प्रकट नहीं होता।

अन्य दर्शन वाले भी अपने मत के अनुसार अध्यात्मज्ञान को मान देते हैं। जैन स्याद्वाद की अपेक्षा से अध्यात्मज्ञान

निर्दयः कामचाण्डालः, पण्डितानपि पीडयेत् ।
यदि नाध्यात्मशास्त्रार्थम्, बोधयोधकृपा भवेत् ॥ १५ ॥
विषवल्लिसमां तृष्णां, वर्धमानां मनोवने ।
अध्यात्मशास्त्रदात्रेण छिन्दन्ति परमर्षयः ॥ १६ ॥
वने वेश्म धनं दौस्थ्ये, तेजोध्वान्ते जलं मरौ ।
दुरापमाप्यते धन्यैः, कलावध्यात्मवाङ्मयम् ॥ १७ ॥
वेदान्यशास्त्रवित्क्लेशं, रसमध्यात्मशास्त्रविद् ।
भाग्यभृद्भोगमाप्नोति, वहते चन्दनं खरः ॥ १८ ॥
भुजास्फालनहस्तास्य, विकाराभिनयाः परे ।
अध्यात्मशास्त्रविज्ञास्तु वदन्त्यविकृतेक्षणाः ॥ १९ ॥
अध्यात्मशास्त्रहेमाद्रि—मथितादागमोदधेः ।
भूयांसि गुणरत्नानि, प्राप्यन्ते विबुधैर्न किम् ॥ २० ॥
रसोभोगावधिः कामे, सद्भक्ष्येभोजनावधिः ।
अध्यात्मशास्त्रसेवाया, रसो निरवधिः पुनः ॥ २१ ॥
कुतर्कग्रन्थसर्वस्व, गर्वज्वरविकारिणी ।
एति दृङ् निर्मलीभाव - मध्यात्मग्रन्थभेषजात् ॥ २२ ॥
धनिनां पुत्रदारादि, यथा संसारवृद्धये ।
तथा पाण्डित्यदृप्तानां, शास्त्रमध्यात्मवर्जितम् ॥ २३ ॥
अध्येतव्यं तदध्यात्म-शास्त्रं भाव्यं पुनः पुनः ।
अनुष्ठेयस्तदर्थश्च देयो योगस्य कस्यचित् ॥ २४ ॥
(अध्यात्मसार)

भावार्थ—कान्ता के अधरामृत के आस्वाद से युवकों को जो सुख मिलता है वह सुख तो अध्यात्मशास्त्र स्वाद से होने वाले सुखरूप समुद्र के सामने एक बिन्दु के समान है। अध्यात्मशास्त्रों के वाचन, श्रवण, मनन और परिशीलन से उत्पन्न होने वाले संतोष सुख में मग्न हुए महात्मा, राजा, धनवान

निर्दय कामरूप चांडाल, अवश्य ही पंडितों को भी दुःख देता है और उन्हें अपना दास बना लेता है। अध्यात्मशास्त्र सूर्य के प्रकाश के समान है; वहां अंधकार में उत्पन्न होने वाला काम चांडाल नहीं आ सकता। अध्यात्मशास्त्र से हृदय में उत्पन्न हुई शुद्ध परिणति के बल के आगे काम के विचार नहीं ठहर सकते। मनरूपी वन में वृद्धि पाने वाली तृष्णारूप विष वेल को, महर्षिगण-अध्यात्मशास्त्र रूपी दांतरी से छेद डालते हैं। तृष्णारूपी विष की वेल का उत्पत्ति स्थान मन है और वह अज्ञान रूपी वायु से पोषित होता है; हरएक प्राणी को अज्ञान अवस्था में अनेक प्रकार की तृष्णा पैदा होती है और वह प्रतिक्षण बढ़ती जाती है। सागर का अन्त आता है परन्तु तृष्णा का अन्त नहीं आता। तृष्णा संसार प्रवृत्तिचक्र की माता है। तृष्णा की विष वेल के फल भी विषैले होते हैं और उनमें से निकलता रस भी विष की तरह होता है। जिसके हृदय में तृष्णारूपी विष बेल नहीं है, ऐसे महापुरुष की हृदय की स्वच्छता अलग ही तरह की होती है। जिसके हृदय में तृष्णारूपी वेल नहीं है उसे किसी की स्पृहा नहीं होती और उसके सामने कोई, दुनिया का चक्रवर्ती-इन्द्र-चंद्र भी बड़ा नहीं है। मनुष्य का शरीर दुर्बल होता है, काले बाल सफेद होते हैं परन्तु अज्ञान योग से तृष्णा दूर नहीं होती। सत्ता, पदवी और धन आदि तृष्णाओं का कभी अन्त नहीं आता और तृष्णा का नाश हुए बिना संतोष प्राप्त नहीं होता, और संतोष बिना सच्चे सुख की आशा रखना व्यर्थ है। गरीब वा धनवान को तृष्णा के विष प्रवाह में बहते कभी सुख की झांकी नहीं होती। तृष्णा का आदर वास्तव में अज्ञान अवस्था में होता है। अज्ञानी मनुष्य सुख के साधन में तृष्णा को देवी की तरह

आदि जिसमें हैं ऐसे अशुभ रस वाले शास्त्रों का अध्ययन कर दुनिया स्वप्न सुख की मोज का अनुभव कर, क्षण में दुःख के श्वास लेता है; फिर भी विष के कीडे की तरह पाप-मय प्रवृत्ति वाले शास्त्रों में ही सुख ढूंढा करता है। श्रीमद् यशोविजयजी उपाध्याय कहते हैं कि इस कलिकाल में बताए हुए दृष्टांतों की तरह अध्यात्मशास्त्र की दुर्लभता है। अध्यात्म-शास्त्रों की प्राप्ति दुर्लभ है, तथा अध्यात्मशास्त्रों की तरफ रुचि होना भी कठिन है। अध्यात्मशास्त्रों को समझाने वाले महापुरुष भी विरले ही हैं। अध्यात्मशास्त्र की प्राप्ति होना यह कोई साधारण बात नहीं है। **अल्पकाल में मुक्ति में जानेवाली आत्मा को अध्यात्मशास्त्र की प्राप्ति होती है** और उसकी अध्यात्मशास्त्र में श्रद्धा होती है, तथा उसके अनुसार उसका व्यवहार होता है। बाह्यशास्त्रों के बनिस्बत अध्यात्म-शास्त्रों की संख्या कम है। बाह्यशास्त्रों से धूमकेतुओं की तरह लोगों का अभ्युदय तथा अस्त होता है। आश्रव की वृद्धि करने वाले शास्त्रों की उत्पत्ति तो सहज हो जाती है और उस तरह प्रवृत्ति भी सहज ही हो जाती है। अध्यात्मशास्त्र तो तीर्थंकररूप हैं और उनकी उत्पत्ति वास्तव में तीर्थंकर से होती है और उससे होनेवाला उदय हमेशा कायम रहता है। अध्यात्म शास्त्रों से आत्मरस पोषित होता है; आत्मरस वास्तव में सब रसों का राजा है, उसका पीनेवाला सत्सुख में मगन हो जाता है। जो सुख हमेशा रहता है, ऐसा सुख अध्यात्मशास्त्र के उपा-सकों को प्राप्त होता है, उनके मन से पाप विचार दूर होने लगते हैं और हृदयरूप आरामबाग में, दयारूप गंगा नदी का प्रवाह बहने लगता है जिससे उनकी [illegible] पवित्रता प्राप्त कर स्वयं सार्थक बन जाते हैं और अपने समागम में आनेवालों को भी सार्थक बना देते हैं।

द्वारा भोगे जाने वाले ऐसे पुण्य के सुख से भिन्न-नित्य और स्वाभाविक सुख को सिद्ध परमात्मा भोगते हैं। ऊपर के श्लोक से और अनुभव से सिद्ध होता है कि, अध्यात्मशास्त्र के आनंद-रस की सीमा नहीं है। जो अध्यात्मशास्त्र द्वारा आत्मा के अनुभव में गहरे उतर गये हैं वे अध्यात्मसुख की लहरों का अनुभव करते हैं। उनको आत्मसुख की प्रतीति होती है, जिससे वे बाह्य ऋद्धि, सत्ता और पदवी वगैरह की उपाधि से मुक्त होकर शरीर में स्थित आत्मा के ध्यान में मस्त रहते हैं और दुनिया के भावों को मिथ्या समझते हैं। अध्यात्मशास्त्र कहते हैं कि "हे दुनिया के मनुष्यों! तुम हमारे पास आओ; हम तुम्हारे त्रिविध ताप को दूर कर निरवधि सुख में मग्न कर देंगे।" हमारे में श्रद्धा रखो।

श्रीमद् उपाध्याय यशोविजयजी कहते हैं कि, कुतर्कवाले शास्त्रों के सर्वस्व गर्वज्वर से विकार वाली बनी ऐसी दृष्टि, वह वास्तव में अध्यात्मग्रंथरूप औषध के प्रयोग से निर्मल बनती है। व्याकरण और केवल न्यायशास्त्र आदि के अभ्यासी गर्व करते हैं और वे विवादों में क्लेश पाते हैं। अन्य शास्त्रों के अभ्यास से पंडित अभिमान करते हैं और उनकी दृष्टि में राग द्वेष की मलिनता रहती है। सरलभाव और सर्व जीवों के साथ शुद्धप्रेम और सब में आत्मदृष्टि रखना - आदि गुणों से, बाह्यशास्त्रों के विद्वान् दूर रहते हैं और जिससे उनकी दृष्टि में विकार रहता है। वादविवाद, भाषा और कुतर्क के अभ्यासी पंडितों की दृष्टि की मलिनता को नाश करने वाले वस्तुतः अध्यात्मशास्त्र हैं। अध्यात्मशास्त्र कहते हैं कि, दृष्टि में रहे रागद्वेष की मलिनता को हम नाश करने में समर्थ हैं। अहंकार का नाश कर मनुष्यों को अपनी आत्मा की पहिचान कराते हैं,

भव के उद्दाम प्रवाह में सब जीव बहते हैं, परन्तु संसार के सामने के प्रवाह में कृष्णचित्रक जड़ की तरह कोई ज्ञानी पुरुष ही होता है वह बह सकता है। जैनागमज्ञाता अप्रमादी मुनिवर संसार के सामने के प्रवाह में तैरता है और मोक्षनगरी में प्रवेश करता है। चित्रावेल की परीक्षा पानी में डालने से होती है। नदी के जल प्रवाह के सामने बह जाती है। लोक किंवदन्ती ऐसी है कि उस पर रखा घृत का घड़ा यदि खाली हो तो वह भर जाता है। कृष्णचित्रकमूल के जैसे आत्मतत्त्वज्ञाता मुनिवर होते हैं, वे दुनिया के प्रवाह में बहते नहीं हैं। रागद्वेष के प्रवाह के सामने बहते हैं और रागद्वेष को दूर करते हैं। वस्तुतः अध्यात्मज्ञान बिना ऐसी अपूर्व शक्ति और कहीं संभव नहीं हो सकती। अध्यात्मज्ञान चित्रावेल के समान है। अध्यात्मज्ञान को भाव चित्रावेल समझना, आत्मा के शुद्धस्वरूप में रमण करना, यही सत्य-मोक्षमार्ग है इस सम्बंध में निम्न प्रकार बताया है।

णिच्छयमग्गो मुक्खो ववहारो पुण्णकारणो वुत्तो।
पढमो संवररूवो आसवहेऊ तओ बीओ।

([illegible])

निश्चय मार्ग ही मोक्ष मार्ग है; व्यवहार है, वह पुण्य का कारण है। निश्चयनय है वह संवररूप है और व्यवहारनय है वह आश्रवहेतुरूप है। व्यवहारनय आदर करने योग्य है परन्तु निश्चयनय की साध्य दृष्टि रखकर व्यवहार में प्रवृत्त करना। आत्मा सम्बन्धी श्रीमद् हेमचन्द्रसूरि का कथन निम्न प्रकार है।

यः परमात्मा परंज्योतिः परमः परमेष्ठिनाम्।
आदित्यवर्णं तमसः परस्तादामनन्ति यम् ॥१॥

की आज्ञा के अनुसार रहकर अध्यात्मज्ञान में मस्त हुए थे। वे स्वयं कहते हैं कि—साधु की क्रिया का आधार ही हमारा बड़ा आधार है। इससे भव्य बंधुओं को यह समझना है कि, व्यवहार मार्ग का भावपूर्वक बाह्य से अनुसरणकर अंतर में निश्चय दृष्टि से स्व स्वरूप में रमण करना। द्रव्यानुयोग के ज्ञाता सब गीतार्थों में महागीतार्थ हैं। द्रव्यानुयोग को जानते हैं वे सम्यग् अध्यात्मज्ञान को समझते हैं। द्रव्यानुयोग ज्ञान से हर एक दर्शन वाले आत्मा को किस तरह मानते हैं और वे किस नय की अपेक्षा से सत्य है वा उनमें किस अपेक्षा के बिना भूल रहती है यह वे जानते हैं इसलिए द्रव्यानुयोग ज्ञान में गहरे उतरकर अध्यात्मज्ञान में स्थिर होना यही सम्यग्ज्ञान का सम्यग् उपाय है। आत्मतत्त्व की स्याद्वादभाव से प्रतीति होना यह सम्यग्दर्शन है और आत्मा के शुद्धधर्म की प्राप्ति और उसमें स्थिरता यही वस्तुतः चारित्र गिना जाता है। भव्यजीवों को अध्यात्मज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रतिदिन ज्ञान की आराधना करना। ज्ञान की आराधना करने से आत्मा के गुण प्रकट करने की रुचि होगी। हेय, ज्ञेय और उपादेय का विवेक होगा। ज्ञान से भरतादि संसार समुद्र से पार हो गये। श्रीमद् उपाध्याय हृदय के मरसोद्गाररूप ज्ञान माहात्म्य का रस निम्न पदों में उतारते हैं।

पद सड़सठवां
(राग आसावरी)

चेतन मोहको संगनिवारो, ज्ञान सुधारस धारो ॥ चेतन ॥१॥
मोह महातम मल दूरेरे, धरे सुमति परकास ॥
मुक्तिपन्थ परगट करेरे-दीपक ज्ञानविलास ॥ चेतन ॥२॥

एक कर्म कर्तव्यता-करे न करता दोय ॥
तेसें 'जस' सत्तासुधि-एकभावको होय ॥चेतन॥१६॥

ज्ञान की महत्ता सम्बंधी इस प्रकार स्व-समय और पर-समय में अनेक साक्षियां मौजूद हैं। उनका यहां विस्तार किया जाय तो एक अलग ही पुस्तक बन जाय। दिगम्बर शास्त्रों में भी अध्यात्मज्ञान सम्बंधी वर्णन है। श्री वीरप्रभु की पट्ट परंपरा में सुविहित आचार्यों द्वारा प्रवर्तते श्वेताम्बर जैन शास्त्रों में व्यवहार और निश्चय की शैली जैसी सरसता से वर्णन की गई है वैसी अन्य जगह नहीं मिलती। जैन श्वेताम्बर मान्य आगमों में अध्यात्मज्ञान का कथन इस तरह किया गया है कि—जिससे कोई भी मनुष्य व्यवहार और निश्चय इन दो नय से भ्रष्ट न हों और जैन शासन की सदा उन्नति हुआ करे।

अध्यात्मज्ञान की वर्तमान दुनिया में कितनी अधिक आवश्यकता है और अध्यात्मज्ञान से जगत् को कितना बड़ा लाभ होता है यह उपरोक्त विचारों से सुज्ञ वाचक समझ सकेंगे। अध्यात्मज्ञान प्राप्ति से श्रावक के व्रतों या साधु के व्रतों से मोक्षमार्ग की आराधना की जा सकती है। श्रावक के गुण और साधु के गुण वास्तव में अध्यात्मज्ञान से आत्मा में प्रकट होते हैं। ऊपर ऊपर के गुणस्थानक भूमि में प्रवेश करने से आत्मा का शीघ्रविकास बढ़ता है और आत्मा, अपने शुद्धधर्म में विचरण करता है।

अध्यात्मज्ञान से रजोगुण और तमोगुणरूप मोह की वृत्ति को दूर करते हुए अपने शुद्ध धर्म में आत्मा स्वयं रमता है और संवरभाव में दृढ़ रहकर समय-समय पर पूर्व संचित कर्मों की

अध्यात्मज्ञान के नाम से कितने ही लोग आजीविकावृत्ति चलाकर स्वार्थ सिद्ध करते हैं ऐसे ढोंगी अध्यात्मियों से सावधान रहना चाहिए। अध्यात्म नाम की पुकार करनेवाले बहुत हैं परन्तु अध्यात्मज्ञान के गहरे प्रदेश में विचरण करने वाले विरले ही होते हैं। अध्यात्मज्ञान के श्लोक-पद आदि बोलकर व पढ़कर जो अपना उदर निर्वाह करते हैं उन्हें अध्यात्मज्ञान का दुरुपयोग करने वाले जानना! अध्यात्मज्ञान के अभ्यास के समय हृदय में अध्यात्मज्ञान नहीं परिणते जिससे जीवों में एकदम गुण नहीं दिखाई देते इससे किसी की निंदा नहीं करना। कितने ही लोगों की ओर से अध्यात्मज्ञानियों की निंदा सम्बन्धी निम्न प्रकार श्लोकार्धचरण सुनने में आता है।

"कलावध्यात्मिनो भान्ति फाल्गुने बालका यथा"

कलियुग में फाल्गुन माह में जिस तरह बालक शोभा देते हैं उस तरह अध्यात्मी शोभा देते हैं। जो लोग इस तरह कहकर अध्यात्मज्ञानियों की एक ही आवाज से बिना जाने निंदा करते हैं वे भूल करते हैं। उनके सामने कितने ही अध्यात्मज्ञानी इस तरह कहते हैं:—

"कलौ क्रियाजडा भान्ति फाल्गुने बालका यथा"

कलियुग में क्रिया से एकांत जड़ बने मनुष्य फाल्गुन माह में बालकों के क्रिया की चेष्टा की तरह शोभा देते हैं।

इस तरह परस्पर एक दूसरे पर आक्षेप करने से आत्मा का कल्याण नहीं होता। अध्यात्मज्ञान और सत्क्रिया इन दोनों से मुक्ति होती

परपुद्गलवस्तुओं के आधीन होने से कभी कोई सुखी नहीं नहीं हुआ है। एक परमाणु के भी अधीन रहने से आत्मा का खरा सुख प्रगट नहीं होता। चारों तरफ लाखों वस्तुएँ हों और पुद्गल में आत्मा रहे फिर भी पुद्गल में आसक्तिभाव से जो नहीं बंधता उसे परवशत्व प्राप्त नहीं होता। कल्पित शुभ वस्तुओं में इष्ट भाव धारण करने से और मन की मान्यता से कल्पित अशुभ वस्तुतों में अनिष्ट कल्पना होने से परवशत्व प्राप्त होता है। जो मनुष्य जड़ पदार्थों में इष्ट और अनिष्ट कल्पना से बंधकर भी उसमें परवश नहीं होता वह मनुष्य इस संसार में जीवन मुक्त की कोटि में प्रवेश करने में समर्थ होता है। अध्यात्मज्ञानी परवशता के बंधनों को दूर करता है और अध्यवसायों का नाश कर शुद्ध धर्म प्रकटाता है। अध्यात्मज्ञानी अपने में परवशता की बेड़ी की कल्पना नहीं करता और जिससे दुखी भी नहीं होता। जो मनुष्य परवश रहता है उसे स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता। जिसके वश में रहता है वे वस्तुएं वास्तव में आत्मा की कीमत आंकने में समर्थ नहीं होती और वरन् उन वस्तुओं की ममता से आत्मा की आनंद-दशा आच्छादित होती है; ऐसी स्थिति समझने के बाद कौन-सा ज्ञानी परवशता में रहने की इच्छा करेगा? अलबत्ता कोई ज्ञानी परवशतारूप दुःखोपाधि प्राप्त करने की इच्छा नहीं करता। अज्ञानी मनुष्य सुख की बुद्धि से परवस्तु की परवशता में फंसकर अन्त में व्याकुल होता है और निराशायुक्त उद्गारों से दूसरों को अपनी आंतदशा का चरित्र बताता है। दुनिया में अन्त वक्त में निराशा-परवशता और दुःख के उद्गार बाहर निकालकर मरने वालों ने जीने वालों को अपना अनुभव बताया है, तथापि दुनिया की आंख नहीं खुलती, और बेकार-दुःख

अनुभव नहीं होती। बाहर की स्वतंत्रता और आत्मा की वास्तविक स्वतन्त्रता में आकाश पाताल जितना अन्तर है। बहुत पुत्र, बहुत स्त्रियां, बहुत धन, सत्ता और पदवियों के मायिक अलंकारों आदि की प्राप्ति से सच्ची स्वतंत्रता की गंध भी प्राप्त नहीं होती।

इंद्रियों तथा शरीर के आधीन रहकर इंद्रियों और शरीर के द्वारा सुख लेने के विचार और आचारों में स्वतन्त्रता नहीं है। स्वाभाविक सुख इंद्रियों-मन और शरीर के आधीन नहीं है, और वह देह तथा इंद्रिय सेवकों की दृष्टि में आता भी नहीं है। स्वाभाविक आनंदरस की धारा का अमृत जहां बहता है उसमें, और उनके आधीन जो रहते हैं वे दुनिया की बाह्य दृष्टि से ऊंघते हुए भी अंतर से जाग्रत होकर सुखरूप स्वयं को देखते हैं, और सुख के भोक्ता स्वयं बनते हैं। स्थूल बुद्धि धारक मनुष्यों की बुद्धि वास्तव में ऐसे स्ववशता के उच्च प्रदेश में प्रवेश नहीं कर सकती और जिससे उसे रुपये-पैसे के खेल जैसी बाह्य वस्तुओं में परवशता में सुख भोगने का मन होता है, और वह अंतर से उसीमें आसक्त होकर अपने शुद्ध प्राण से जीवित रहने में समर्थ नहीं हो सकता। बाह्य शृंगारादि रसों में मग्न लोग बाह्य रसों के भोगी बनकर परवश बनते हैं, और भ्रमणा से यह समझते हैं कि हम स्वतंत्र बन रहे हैं। माता से अलग रहने का विचार किया, पिता की आधीनता छोड़ी, अलग घर और अलग दुकान कर पुत्र ऐसा समझता है कि मैं पिता से अलग होकर स्वतंत्र हो गया। परंतु जैसे जैसे वह उपाधि के आधीन होता जाता है वैसे-वैसे उसे मालूम पड़ता है कि मैं परतंत्र होता जा रहा हूं। आवश्यक वस्तुओं से अधिक वस्तुओं की तृष्णा बढ़ने से मनुष्य, [illegible]

मरण की अपेक्षा बिना व्यवहार करो, देखो और बोलो यानी अपनी वास्तविक आत्मवशता का खयाल आवेगा। किसी भी जड़ वस्तु में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से प्रतिबंध रखे बिना व्यवहार किया जाता है यानी आत्मवशता की अलौकिकता का अनुभव होता ही है। आत्मवशता के गहरे अनुभव में उतरना हो तो बाह्य रूप में मैं नहीं हूं और बाह्य दृश्य जो भी हैं वे मैं नहीं हूं ऐसा दिव्य भाव विकसित करो। आत्मवशता से सहजसुख का भान रहता है और दुःख का विपाक दूर रहता है। आत्मवशता प्राप्त करनी हो तो सब प्रकार की वासनाओं को ज्ञानाग्निरूप यज्ञ में जलाकर भस्म करनी पड़ती है। शुभ और अशुभ वासनाओं से अपना ममत्व और जीवत्व दूर कर दो यानी आत्मवशता क्या है इसका खयाल स्वयं ही आयगा। अपनी आत्मा की स्वतन्त्रता प्राप्त करने की पहली कुंजी यह है कि—आत्मा को आत्मद्रव्यरूप में ही देखना और उसमें जड़ का सम्बंध होने पर भी जड़ को अलग ही देखना। मैं आत्मा हूं और मैं मेरी क्रिया करता हूँ और जड़वस्तु, वास्तव में जड़ की क्रिया करता है; इस प्रकार भेदज्ञान दृष्टि की सिद्धि कर आत्मा और आत्मा के गुणों का अभेदता से चिंतन करना। आत्मा और आत्मा के गुणों की एक्यभाव से आत्मा में ही रमणता करने से और पुद्गल का सम्बंध होने पर भी पौद्गलिक अहंवृत्ति नहीं मानने से आत्मा की सच्ची स्वतंत्रता झलक उठती है। ऐसी सत्यात्मवशता की झांकी का अनुभव करने वाले महात्मा दुनिया में रहते हुए भी दुनिया से निर्लेप रहते हैं। कांसी के बर्तन और कमल के पत्ते को जैसे जल का लेप नहीं लगता वैसे सच्ची आत्मवशता के गुणभोगियों को लेप नहीं लगता। बाहर से मनुष्य कभी सच्चा स्वतन्त्र नहीं

चली जाती है परन्तु जल को कुछ हानि नहीं होती, वैसे ज्ञानी आत्मवशतारूप स्टीमर से संसार समुद्र के राग-द्वेष के कल्लोलों पर होकर मुक्तिनगरी की तरफ चले जाते हैं।

दुःख का मूलभूत परवशता और सुख का मूलभूत स्ववशता का स्वरूप समझकर अपने को सच्ची स्ववशता प्राप्त करना चाहिए। सच्ची स्ववशता प्राप्त करने के लिए आगमों को आगे कर प्रयत्न करो। आगमों के आधार पर सच्ची स्ववशता प्राप्त करने का प्रयत्न करना जरूरी है। रागद्वेष योग से विकल्प-संकल्प के परवशपन में जो जीवन व्यतीत करते हैं वे राजाओं के राजा और इन्द्र हों फिर भी सच्ची स्ववशता को प्राप्त नहीं कर सकते; ऐसा कहें तो किसी बात का विरोध नहीं होगा। आत्मवश होने के उपायों का प्रतिक्षण अभ्यास करने की जरूरत है। जिस जिस समय जो जो कार्य किए जावें उस उस समय वे वे कार्य करते हुए मैं आत्मवश हूँ परन्तु परवश नहीं होता, ऐसा दृढ़ संकल्प करना. तथा परवशवृत्ति चलती हो तो उसे दूर करने का प्रयत्न करना। बाह्य बंधन आशक्ति बिना आत्मा को बांधने में समर्थ नहीं होते मैं आत्मा हूँ, परभाव यह मेरा धर्म नहीं है, स्वभाव ही मेरा धर्म है। परभावरूप परतंत्रता मैं नहीं चाहता और उससे मैं अलग हूँ, मेरा ऐसा प्रयोजन नहीं है, ऐसा शुद्ध भाव धारण कर अधिकारपूर्ण कार्य करने से अंतर में तीव्र संक्लेश नहीं होता और क्षण क्षण में आत्मा के परिणाम की अनंतगुणी शुद्धि होती है। शुभाशुभ परिणाम से रहित और शुद्धाध्यवसाय में विचरती ऐसी आत्मा, अपनी सच्ची स्वतंत्रता का भोक्ता बनता है। —उपयोगे धर्म, परिणामे बंध और क्रियाए कर्म इन तीन कहावतों का गुरुगमपूर्वक अनुभव प्राप्त किया जावे तो

होता है और वह वेदने में आता है। पांचवे कर्मग्रंथ में श्रीमद् देवेन्द्रसूरिजी तीव्र संकलेश और आत्मा के अध्यवसाय की शुद्धि सम्बंधी ऐसा सरस विवेचन करते हैं कि, जिसका मनन करने से आत्मा के सम्बंध में किस तरह व्यवहार करना और कर्म को किस तरह हटाना यह स्पष्ट हो जाता है। चौथे गुणस्थानक से भी पांचवे गुणस्थानक में आत्मा के परिणाम की अनंतगुणी विशुद्धि होती है, और पांचवे गुणस्थानक से भी छठे गुणस्थानक में कषाय की मंदता से आत्मा के परिणाम की अनंतगुणी विशुद्धि होती है। छठे से भी सातवें गुणस्थानक में कषाय की विशेष मंदता से आत्मा के परिणाम की अनंतगुणी विशुद्धता प्रगट होती है। इस तरह ऊपर के गुणस्थानकों में स्वगुणस्थानक की अपेक्षा से ऊपर के गुणस्थानकों में अनंतगुणी विशुद्धता प्रगट होती है ऐसा समझना। जैसे जैसे तीव्र संकलेश दूर होता जाता है और आत्मा के अध्यवसाय की शुद्धि होती जाती है वैसे वैसे पाप प्रकृतियों का बंध दूर होता जाता है और शुभ प्रकृतियों का बंध पड़ता जाता है और पूर्व में बांधे अनंत कर्मों की निर्जरा होती है। कषायों की मंदता जैसे जैसे होती है वैसे वैसे आत्मा की शुद्धि होती जाती है। युगलिक मनुष्य कषायों की मंदता से देवलोक में जाते हैं। इससे अनुभव होता है कि, **कषाय की क्षीणता करने में ही चारित्र का सच्चा रहस्य समाविष्ट है।** चौथे गुणस्थानक वाले जीव देशविरति परिणाम से श्रावक के बारह व्रत अंगीकार करता है। चौथे गुणस्थानक का अध्यात्मज्ञान देशविरति वाले पांचवें गुणस्थानक का अध्यात्मज्ञान वास्तव में चारित्र की अपेक्षा से विशेष शुद्ध जानना। पांचवें देशविरति श्रावक व्रत से भी छट्ठे गुणस्थानक वाला सर्वविरति साधु। [illegible]

अध्यात्मज्ञान का असर वास्तव में मुनिवर-व्रतों का पालन कर और आत्मा का ध्यान कर दूसरों पर डाल सकते हैं वैसा गृहस्थ नहीं कर सकते। जो मोहमाया में फंसकर अध्यात्मज्ञान का स्वस्वार्थ के लिए उपयोग करते हैं उन्हें ब्रह्मराक्षस के समान समझना। अध्यात्मज्ञान प्राप्त कर साधु होकर जो आत्मा की आराधना करते हैं, ऐसे मुनिराज इस जगत् में अध्यात्मज्ञान का झरना बहाने में समर्थ होते हैं। अध्यात्मज्ञान की मूर्तिरूप मुनिराजों की सेवा करने से अध्यात्मज्ञान का आत्मा में परिणमन होता है।

व्रतों के साथ अध्यात्मभावना हो तो आत्मा में अध्यात्मज्ञान वास्तविक रूप में परिणमता है। बाईस परिषह सहन करते समय स्वर्ण रस की तरह अध्यात्मरस की शुद्धि होती है; इसलिए चारित्र के साथ अध्यात्मज्ञान शोभा देता है। योद्धा के मुंह से युद्धरस के जो शब्द निकलते हैं और उनमें जो वीर-रस झलकता है वह नाटक करने वाले के मुंह से निकले वचनों में कहां से आ सकते हैं? सती स्त्री के मुंह से पति-भक्तिरस के जो वचन निकलते हैं और उनमें जो दिव्यत्व होता है, वैसा दिव्यत्व वास्तविक सती स्त्री का वेष लेकर आनेवाली नाटिका के हृदय से नहीं निकल सकता। करुणारस, हास्यरस और भयरस के जो स्वाभाविक पात्र बने हों उनसे जैसा नाटककार रस प्रगटाने में कृत्रिमता मालूम हुए बिना नहीं रहती। इस पर से समझना है कि अध्यात्ममय जिसका मन, वाणी और काया हुई हो और जो अध्यात्मरस के हृदय में से स्वाभाविक उद्गार निकालता हो, ऐसा पात्र ही वास्तव में दुनिया में अध्यात्मज्ञान का विद्युत की तरह प्रकाश करने में समर्थ होता है। जिसके रोम रोम में अध्यात्मज्ञान भर गया हो और जिसकी [illegible]

हैं और जिससे तीक्ष्ण वैराग्य प्रवाह हृदय में पैदा नहीं होता। अध्यात्मज्ञान भी कई वर्षों के परिशिलन विना परिपक्व नहीं होता; जिससे अध्यात्मज्ञान में परिपक्वानुभव प्राप्त कि विना शुष्कता प्राप्त होने का प्रसंग आता है। प्रायः दो शताब्दि के अंतर से अध्यात्मज्ञानमार्ग और क्रियामार्ग का उद्धार करने वाले मुनिवर प्रकट होते हैं। आचार्य श्री के हाथ से क्रियोद्धार होता है। मुनिचंद्रसूरि, जगच्चंद्रसूरि, आनंदविमलसूरि आदि मुनियों ने क्रिया की शिथिलता को हटाने में जो उत्तम चारित्र का पालन किया है उसका खयाल करना महा कठिन है। क्रियोद्धार करने की जब जरूरत होती है तब (उस काल में) चारों तरफ क्रियोद्धार की आवाज सुनाई देती है और उस समय में वैसी उत्तम सामग्रीधारक आचार्य प्रकट होते हैं। अठारहवीं शताब्दि में आचार्यों ने स्वयं खास क्रियोद्धार नहीं किया, परन्तु तपागच्छ विजयशाखा में पन्यास श्री सत्यविजयजी ने क्रियोद्धार किया है। वे विजयसिंहसूरि और श्री विजयप्रभ-सूरि की आज्ञा में थे। अठारहवीं सदी में बड़े बड़े विद्वान् साधु बहुत थे, जिससे उस समय में ज्ञान की ज्योति चरम सीमा पर थी, किन्तु अध्यात्मज्ञान की तरफ साधुओं का विशेष लक्ष नहीं था। तथा क्रिया में भी शिथिलता आगई थी और आचार्य-गीतार्थों में प्रायः थोड़ी शिथिलता तथा गच्छक्लेश से संकुचितता, आदि दोष प्रकट हो गये थे। उस समय मुख्यतया अध्यात्मज्ञान मार्ग के उद्धारक रूप में श्रीमद् आनंदघनजी और ज्ञानक्रिया मार्ग के उद्धारक रूप में उपाध्याय श्री यशोविजयजी प्रकट हुए थे।